GEPS-02

भारतीय संविधान: एक परिचय

(Indian Constitution: An Introduction)

राजनीति विज्ञान विभाग
समाज विज्ञान विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani

हैलो हल्द्वानी

91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 एम0एम0 सेमवाल** राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल
प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय , ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश	**प्रो0 सतीश कुमार** राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 सूर्य भान सिंह **(विशेष आमंत्रित सदस्य)** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एव सम्पादन

डॉ0 सूर्य भान सिंह एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ लता जोशी ,असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी	**1**
डॉ. शिव प्रकाश राय,राजकीय महाविद्यालय ,गरुण ,बागेश्वर	**2**
डॉ सूर्यभान सिंह सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान ,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**3,6,7,9**
डॉ. घनश्याम जोशी, एकैडमिक एसोसिएट लोक प्रशासन,आरुशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**4**
डॉ. अजीत कुमार ,असिस्टेंट प्रोफ़ेसर राजनीति विज्ञान के.एन.आई.पी.एस.एस.सुल्तानपुर	**5**
डॉ आशुतोष पांडे एसोसिएट प्रोफे.राजनीति विज्ञान विभाग,डॉ. शकुंतला मिश्र पुनर्वास वि.लखनऊ	**8**
डॉ. घनश्याम जोशी, एकैडमिक एसोसिएट लोक प्रशासन , उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**10**

आई.एस.बी.एन. ----------

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष -2023

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :----------

संस्करण :2023, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

मुद्रित प्रतियां

अनुक्रम

भारतीय संविधान:एक परिचय **जीईपीएस-02, पृष्ठ संख्या**

इकाई 1. संविधान और संविधान सभा	1-18
इकाई 2. संविधान के श्रोत	19-33
इकाई 3. भारतीय संविधान का स्वरुप	34-45
इकाई 4. संघवाद	46-59
इकाई 5. नागरिकता	60-78
इकाई 6. मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य	79-100
इकाई 7. नीति-निदेशक तत्व	101-111
इकाई 8. सरकार के अंग: विधायिका, कार्यपालिका,न्यायपालिका	112-128
इकाई 9. संसद	129-141
इकाई 10. स्थानीय स्वशासन	142-155

इकाई -1 संविधान और संविधान सभा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 संविधान का अर्थ , परिभाषा और महत्त्व

1.3 संविधान का महत्त्व

1.4 भारतीय संविधान की विकास : औपनिवेशिक काल में संविधान का विकास

1.5 संविधान निर्माण और संविधान सभा

1.5.1 क्रिप्स मिशन

1.5.2 कैबिनेट मिशन

1.5.3 माउंटबेटन योजना

1.5.4 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम

1.6 संविधान सभा का गठन , संविधान निर्माण और संविधान सभा की कार्य प्रणाली

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

आज के समय में शिक्षार्थियों को अपने देश को जानने व समझने की जरुरत है , जिसमें समकालीन भारत के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टिकोंण , राजनीतिक पहलु, संवैधानिक दायित्व व मूल्य , अधिकार व कर्तव्य की समझ विकसित करने की आवश्यकता है। भारतीय संविधान के मूल्यों व दर्शन को समझने के लिए पहले यह जानना होगा कि संविधान क्या है? भारतीय संविधान का विकास कैसे हुआ ? और संविधान को क्यूँ पढ़ा जाना चाहिए। इसका क्या महत्व है।

प्रथम इकाई में हम उपरोक्त बातों को जानने का प्रयास करेंगे। इसके साथ संविधान सभा के विषय में विस्तार से विचार करेंगे।

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1 संविधान का अर्थ समझ सकेंगे।

2 संविधान का महत्व समझ सकेंगे।

3 संविधान सभा के विषय में जानेंगे।

1.2 संविधान की परिभाषा और अर्थ

संविधान की आवश्यकता क्यों है ? इसके महत्व को इस बात से भी समझा जा सकता है कि आज सभी विकसित देशों के पास अपना संविधान है। संविधान हमेशा उस देश के नागरिकों के हित में होता है। यह राजनीतिक ढांचा प्रदान करता है , एक संतुलित सरकार स्थापित करता है, अधिकार मूल्यों और मानवाधिकारों को कायम रखता है। हर संविधान कुछ मूल्यों को दर्शाता है जो राजनीतिक व्यवस्था में मूल (कोर) का निर्माण करते हैं। संवैधानिक मूल्य न केवल सरकार बल्कि नागरिकों और समाज को भी बड़े पैमाने पर मार्गदर्शन कराने का काम करते है। प्रदान करता है और लोकतान्त्रिक संवैधानिक मूल्य भारत के संविधान में हर जगह प्रतिविम्बित होते हैं, लेकिन इसकी प्रस्तावना में मूलभूत मूल्यों तथा दर्शन को समाहित किया गया है। इसमें संप्रभुता, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, लोकतंत्र, गणराज्य, न्याय (सामाजिक, आर्थिक,राजनीतिक) ,स्वतंत्रता समानता और समता जैसे मूल्यों को आत्मसात किया गया है। हर नागरिक का कर्तव्य है कि संवैधानिक मूल्यों का सम्मान करे।

हर देश के संविधान का अपना एक दर्शन होता है, मतलब वे आदर्श जिनसे संविधान प्रेरित हुआ हो । इसमें वे नीतियों भी शामिल होती हैं जिन पर संविधान और शासन प्रणाली आधारित है। संविधान के दर्शन का मतलब संविधान में उल्लेखनीय देश के दर्शन के मूल्य व आदर्शों से है जैसे भारतीय संविधान स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र व सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध है । इस सबके साथ उसके दर्शन को शांतिपूर्ण तथा लोकतान्त्रिक तरीके से अमल किया जाये। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता, अल्पसख्यकों के अधिकारों का सम्मान, धार्मिक समूहों के अधिकार सार्वभौम मताधिकार, संघवाद आदि का भी समावेश हुआ है। संविधान के दर्शन का सर्वोत्तम सार संक्षेप में संविधान की प्रस्तावना में वर्णित है।

दुनिया के किसी भी देश में किसी भी प्रकार की शासन प्रणाली में बुनियादी नियमों की आवश्यकता होती है। यह बात हर संगठन पर लागू होती है, हर संगठन के नियम कानून होते है । संविधान की आवश्यकता को मानते हुए जैलीनेक ने लिखा है कि " संविधान के बगैर राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। संविधान के आभाव में राज्य, राज्य न होकर एक प्रकार की अराजकता होगी"

मानव शरीर के सन्दर्भ में संविधान के आंग्ल पर्यायवाची शब्द 'कॉन्स्टीट्यूशन' का प्रयोग मानव शरीर के ढांचे व उसकी बनावट के लिए किया जाता है। जिस प्रकार मानव शरीर के सन्दर्भ में कॉन्स्टीट्यूशन का अर्थ शरीर के ढांचे व गठन से होता है, उसी प्रकार नागरिकशास्त्र में, कॉन्स्टीट्यूशन का तात्पर्य राज्य के ढांचे तथा संगठन से होता है।

संविधान की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों द्वारा संविधान की परिभाषा अलग-अलग प्रकार से की गयी है, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं:

लीकाक: "किसी राज्य के ढांचे को उसका संविधान कहते हैं।"

फाइनर : "संविधान मूलभूत राजनीतिक संस्थाओं की एक व्यवस्था है।"

ब्राइस : "किसी राज्य अथवा राष्ट्र के संविधान का निर्माण उन नियमों अथवा कानूनों के योग से होता है जो सरकार के स्वरूप तथा सरकार के प्रति नागरिकों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं।"

गिलक्राइस्ट का कथन है कि "संविधान उन लिखित या अलिखित नियमों अथवा कानूनों का समूह होता है ,जिनके द्वारा सरकार का संगठन, सरकार की शक्तियों का विभिन्न अंगों में वितरण और इन शक्तियों के प्रयोग के सामान्य सिद्धान्त निश्चित किये जाते हैं।"

प्रो डायसी के अनुसार, "संविधान उन समस्त नियमों का संग्रह है जिनका राज्य की प्रभुत्व सत्ता के प्रयोग अथवा वितरण पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।"

विद्वानों द्वारा संविधान शब्द की जो परिभाषा की गयी है, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी राज्य के संविधान द्वारा प्रमुख रूप से निम्नलिखित तीन बातें निश्चित की जाती हैं : (1) व्यक्ति-व्यक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध, (2) व्यक्ति और राज्य अर्थात् शासक और शासित के पारस्परिक सम्बन्ध, (3) सरकार के संगठन, उसके ढांचे और सरकार के विविध अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों को निश्चित करने का किया जाता है।

प्रारंभ से ही मनुष्य के सामने तीन प्रश्न रहे हैं –

क्या सरकार जरुरी है? सरकार का सबसे अच्छा स्वरुप क्या है? हम सरकार को निरंकुश बनने से कैसे रोक सकते है?

इन प्रश्नों का उत्तर संवैधानिकता के विचार का मूल है और फिर संवैधानिक कानून । संविधान सिद्धांतों और प्रथाओं के उस निकाय को संदर्भित करता है जो राज्य के संगठन का आधार बनाते हैं। यूनानी दार्शनिक अरस्तू के अनुसार " मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, एक मनुष्य या परिवार अलगाव में जीवित नहीं रह सकता है। मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह खुद को समुदाय या समाज से जोड़ कर रखे । जनसँख्या वृद्धि से इन समाजों का विकास हुआ और व्यवस्था बनाये रखने के लिए नियम-कानून की जरुरत पड़ी । इसी जरुरत से कानून और सरकार की जरुरत पड़ी ।

1.3 संविधान का महत्व

1 संविधान बुनियादी नियमों का एक ऐसा समूह उपलब्ध करता है जिससे समाज के सदस्यों में एक न्यूनतम समन्वय और विश्वास बना रहे ।

2 समाज में निर्णय लेने की शक्ति किसके पास होगी यह भी संविधान तय करता है कि सरकार कैसे तय करता है कि सरकार कैसे निर्मित होगी।

3 संविधान ही सरकार को ऐसी क्षमता प्रदान करता है जिससे वह जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सके और एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए उचित परिस्थितियों का निर्माण कर सके।

4 संविधान देश का आधारभूत कानून होता है जो विधि का शासन लागू करता है ।

5 संविधान सर्वोच्च कानून होता है यदि सरकार का कोई निर्णय व नियम इसके अनुरूप न हो तो उसे असंवैधानिक घोषित कर दिया जाता है।

6 सरकार की शक्तियों को सीमित करता है और सरकार को शक्तियों के दुरूपयोग से भी रोकता है।

7 संविधान लोगों की बदलती आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में सक्षम है।

1.4 भारतीय संविधान का विकास: औपनिवेशिक काल में संविधान का विकास

भारतीय संविधान जनता के प्रतिनिधियों के समूह के विचार-विमर्श व गहन शोध से बनकर तैयार हुआ। जिसमें भारतीय मूल्य व दर्शन को ध्यान में रखकर सविधान का निर्माण किया गया। भारतीय संविधान के दर्शन , मूल्य व तमाम पहलुओं को समझने के लिए संविधान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है।

भारत के संविधान के ऐतिहासिक विकास के विषय में जानकारी भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने से पहले पारित कई नियमों और अधिनियमों से लगायी जा सकती है। इतिहास में कई घटनाओं की श्रृंखला के फलस्वरूप भारत के संविधान का विकास हुआ। यहाँ की विविध संस्कृति, भूभाग और लोग एक विविधता भरे देश को बनाते हैं , इसलिए संविधान बनाते हुए इन सब बातों का ध्यान रखा जाना अपने आप में चुनौती वाला काम था। जिससे इस विविधता से भरे देश को एक मजबूत संविधान दिया जा सके। भारत में कई प्रणालियों का जन्म ब्रिटिश शासन के वजह से हुआ है तो ओपनिवेशिक शासन के दौरान के विभिन्न अधिनियमों को जानना अनिवार्य हो जाता है।

रेगुलेटिंग एक्ट 1773

बक्सर के युद्ध (1764) के बाद ईस्ट इण्डिया कंपनी ने बंगाल, उड़ीसा और बिहार में राजस्व एकत्र करने का अधिकार प्राप्त किया। इसके कारण कंपनी के कर्मचारियों द्वारा मनमाने तरीके से सम्पत्ति इकट्ठा की जाने लगी जिस पर ब्रिटेन की संसद में सवाल उठे। ब्रिटिश सरकार द्वारा एक समिति बनके कंपनी की जाँच की गयी और अपनी रिपोर्ट में कंपनी पर सरकारी नियंत्रण लागू करने और और को विनियमित करने के लिए सुझाव दिया गया यह एक्ट भारत में प्रशासनिक व्यवस्था लागू करने के लिए लाया गया था। इस एक्ट में पहली बार ब्रिटिश मंत्रिमंडल को भारतीय मामलों पर नियंत्रण रखने का अधिकार दिया गया। कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना की गयी जिसमें मुख्य न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीश शामिल थे व इसने केन्द्रीय प्रशासन की नींव पड़ी।

पिट्स इंडिया एक्ट 1784

यह अधिनियम रेगुलेटिंग एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए पारित किया गया। इस एक्ट के तहत कंपनी के स्वामित्व वाले क्षेत्रों को "भारत में ब्रिटिश संपत्ति" कहा जाता था और इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार और कंपनी द्वारा भारत में ब्रिटिश संपत्ति का दोहरा नियंत्रण हुआ।

1813 का चार्टर अधिनियम –

नेपोलियन की कॉन्टिनेंटल सिस्टम (जिसमें यूरोप में फ्रांसिसी सहयोगियों में ब्रिटिश माल के आयत पर रोक लगा दी) के कारण ब्रिटिश व्यापारियों को नुकसान उठाना पड़ा। अतः उन्होंने सरकार से एशिया में व्यापार में हिस्से की मांग की। इस पर कम्पनी ने अपनी असहमति जाहिर की परन्तु आख़िरकार ब्रिटिश व्यापारियों को 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा भारत में व्यापार करने की अनुमति मिल गयी। चीन के साथ व्यापार और चाय व्यापार में ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार रखा गया। इस अधिनियम के तहत मिशिनिरियों को भारत में आने दिया गया और धर्मान्तरण करवाने की अनुमति दी गयी। भारत में एक विशप की नियुक्ति भी की गयी।

1833 का चार्टर अधिनियम –

इस एक्ट ने बंगाल के गवर्नर-जनरल को भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया। इस तरह से भारत के प्रशासन का केन्द्रीकरण हुआ , विलियम बेंटिंग पहला गवर्नर जनरल बना। भारत के गवर्नर-जनरल के पास अब सारी विधायी शक्तियां थी और बंबई मद्रास प्रान्त के गवर्नर के पास कोई विधायी शक्ति नहीं रही। इस एक्ट ने सिविल सेवकों के लिए खुली प्रतियोगिता को प्रारंभ किया जिसमें भारतीय भी शामिल हो सकते थे। गवर्नर-जनरल की परिषद् के चार सदस्य थे जो भारत के लिए कानून बनाने , कानून में संसोधन करने , निरस्त करने की शक्ति रखते थे। कानूनों को व्यवस्थित रूप देने के लिए (संहिता बनाने) भारतीय विधि आयोग की स्थापना की गयी जिसके पहले अध्यक्ष लार्ड मैकाले बने ।

1853 का चार्टर एक्ट –

इस एक्ट ने आज के संसदीय स्वरूप की नींव के रूप में काम किया साथ ही भारतीय सिविल सेवा को भी जन्म दिया। गवर्नर जनरल की परिषद के विधायी और कार्यकारी परिषदों को अलग किया गया जिसमें छ:- छ: सदस्य नियुक्त किये गये। गवर्नर जनरल के लिए नई विधान परिषद् का गठन किया गया जिसे भारतीय विधान परिषद् का नाम दिया गया। इस एक्ट के द्वारा स्थानीय सरकार को प्रारंभ करने का काम किया गया और विधान परिषद में भी प्रतिनिधित्व दिया गया।

भारत सरकार अधिनियम 1858 –

1857 के विद्रोह से ब्रिटिश सरकार को कंपनी की नीतियों पर संदेह होने लगा और इस विद्रोह का कारण भी कंपनी को ही माना गया। इस एक्ट के द्वारा भारत में ब्रिटिश क्षेत्रों का संप्रभु ब्रिट्रेन के ताज (ब्रिट्रेन की महारानी) को बना दिया गया। इस अधिनियम द्वारा भारत के राज्य सचिव पद का प्रावधान किया गया । इस अधिनियम ने यह बदलाव भी किया कि भारत के गवर्नर-जनरल को वायसराय बनाया गया। पहले वायसराय लार्ड कैनिन बने।

भारत परिषद् अधिनियम 1861

भारत परिषद् अधिनियम 1861 में पोर्टफोलियो प्रणाली प्ररम्भ की गयी जिसमें हर सदस्य को एक विशेष विभाग का मंत्रिपद (पोर्टफोलियो) सौंपा गया। विधायी कार्यों के लिए गवर्नर जनरल की परिषद् में 6-12 अतिरिक्त सदस्यों को जोड़ा गया। जिसे गवर्नर जनरल द्वारा 2 वर्ष के लिए मनोनीत किया जाता था। इस परिषद् में भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को भी रखा गया । (तीन भारतीय सदस्यों में बनारस के राजा, पटियाला के राजा और सर दिनकर राव थे) गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद् का विस्तार भी किया गया और 1 सदस्य को शामिल किया गया सदस्य बनने के लिए न्यायविद होना जरुरी था। 1833 के चार्टर एक्ट में जो शक्तियां मद्रास और बंबई प्रान्त से छीन ली गयी थी। 1861 के अधिनियम द्वारा पुन: दे दी गयी। अब कलकत्ता की विधान परिषद् भारत के लिए कानून पारित करने की शक्ति रखती थी ।

भारत परिषद् अधिनियम 1909

इस अधिनियम को मार्ले-मिन्टो सुधार भी कहा जाता है । इस अधिनयम में चुनाव प्रणाली के सिद्धांत को स्वीकार किया । इस अधिनियम ने मुस्लिम समुदाय को विशेष रियायतों के साथ प्रतिनिधित्व दिया। सरकार इस तरह का लालच दे कर राष्ट्रवाद को कम करना चाहती थी । इस एक्ट से विधान परिषद् में विचार विमर्श की संस्कृति बड़ी। अब विधान परिषद् बजट या लोकहित के विषय में संकल्प प्रस्ताव पारित करके प्रशासन को प्रभावित कर सकती थी।

भारत शासन अधिनियम 1919

भारत के संवैधानिक विकास में भारत शासन अधिनियम 1919 की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान कांग्रेस सक्रिय हो गयी और उसने स्वराज के लिए संघर्ष शुरू कर दिया इस संघर्ष को स्वराज आन्दोलन कहा गया। तभी ब्रिटिश सरकार ने प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों को शामिल करने की घोषणा की जिससे ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी सरकार को स्थापित किया जा सके। उस समय भारत के राज्य सचिव मोंटेग्यू और गवर्नर जनरल चेम्सफोर्ड थे, इन्हें ही ब्रिटेन

सरकार की नीति के क्रियान्वयन के लिए रिपोर्ट तैयार करनी थी जो भारत शासन अधिनियम 1919 के रूप में सामने आई। आठ प्रान्तों (असम, बंगाल, बिहार और उड़ीसा , मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त, बंबई, मद्रास और पंजाब,) में द्वैध शासन लागू किया गया। एक नए अधिकारी 'भारतीय उच्चायुक्त' की नियुक्ति की गयी जो यहाँ के कार्य की देखरेख करे। गवर्नर- जनरल की कार्यकारी में 3 भारतीयों को नियुक्ति मिली जो विधि, श्रम, शिक्षा,स्वास्थ्य व उद्योग जैसे विभागों को देखते थे। विषयों को केन्द्रीय व प्रांतीय भागों में बांटा गया राष्ट्रीय महत्व के विषय केंद्र सूची में डाले गये जिस पर गवर्नर-जनरल कानून बना सकता था। प्रांतीय सूची के विषयों पर गवर्नर कार्यकारी तथा विधानमंडल की सहमती पर कानून बनता था। इस एक्ट के द्वारा केन्द्रीय विधानसभा का कार्यकाल 3 वर्ष किया गया , जिसे गवर्नर-जनरल बढ़ा सकता था। वायसराय को विधायिका को संबोधित करने का अधिकार था। उसे बैठकों को आहूत करने , स्थगित करने या विधान मंडल को निरस्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ।

1919 के भारत शासन अधिनियम की समीक्षा करने और संवैधानिक सुधार का अध्ययन करने के लिए साइमन कमीशन भारत आया। इस कमीशन में संसद के सात सदस्य थे जिसकी अध्यक्षता सर जन साइमन कर रहे थे। भारत के लोगों ने इसका कड़ा विरोध किया।क्योंकि इस आयोग में एक सदस्य भी भारतीय नहीं था। इसका विरोध कांग्रेस, अन्य नेताओं के साथ-साथ आम जनता ने भी किया और कई विरोध प्रदर्शन हुए। लाहौर में एक प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए पुलिस की मार के कारण ही लाला लाजपत राय गंभीर रूप से घायल हुए और कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गयी।

आयोग ने 1930 में द्वैध शासन प्रणाली को हटाने का प्रस्ताव दिया और भिन्न प्रान्तों में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना का सुझाव दिया। साइमन कमीशन के सुझाव से ही भारत सर्कार अधिनियम 1935 की रह प्रसस्थ हुई। जिसने वर्तमान भारतीय संविधान के कई हिस्सों में अधर के रूप में काम किया। आयोग के आने से भर्ती नेताओं और आम जनता को स्वतंत्रता के प्रति और गति तेज करने का बल मिला।

भारत शासन अधिनियम 1935

यह अधिनयम भारत में संवैधानिक सरकार के विकास में मिल का पत्थर माना जाता है। यह अधिनियम अब तक के अधिनियमों में सबसे लम्बा अधिनियम था। इसे ब्रिटेन की संसद द्वारा अधिनियमित किया गया, जुलाई 1935 को शाही स्वीकृति मिली और 1 अप्रेल 1937 से लागू किया गया। यह अधिनियम साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर, गोलमेज सम्मेलनों की सिफारिशों, ब्रिटेन की सरकार द्वरा प्रकाशित श्वेत पत्र और संयुक्त प्रवर समितियों पर आधारित था। इस अधिनियम ने जिस शासन प्रणाली की व्यवस्था की वो निम्न प्रकार से थी -

प्रांतीय स्वायत्तता : इस अधिनियम में पेइसंघ की स्थापना की गयी जिसकी इकाइयाँ थी प्रान्त और देशी रियासतें। देशी रियासते चाहे तो परिसंघ में मिल सकती थी। हालाँकि ऐसा नहीं हो पाया। इस अधिनियम ने प्रान्तों को पर्याप्त स्वायत्ता दी विधायी शक्तियों को प्रांतीय और केन्द्रीय विधान मंडल के बीच विभाजित किया गया अब प्रान्त प्रशासन की स्वतंत्र इकाई थे। अब प्रान्त की कार्यपालिका गवर्नर/सम्राट की ओर से शक्ति का प्रयोग करती थी। कुछ विषयों में गवर्नर के पास विशेषाधिकार थे ऐसे में गवर्नर,मंत्रिमंडल की सलाह के बिना कार्य करता था।

केंद्र में द्वैध शासन- संघ सूची के विषयों को दो भागों आरक्षित व हस्तांतरित में बांटा गया। केंद्र में कार्यपालिका शक्ति गवर्नर-जनरल के पास थी । इस अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल अपने विवेक और परामर्शदाताओं की मदद से प्रति रक्षा, विदेश कार्य, चर्च आदि कार्य करता था। इन कार्यों के अलावा गवर्नर जनरल को मत्री परिषद् की सलाह से कार्य करने होते थे ।इन विषयों पर भी गवर्नर मंत्रिपरिषद द्वारा दी गयी सलाह को नहीं मानने का अधिकार रखता था।

विधान मंडल - केन्द्रीय विधान मंडल के दो सदन थे। संघीय विधान सभा और राज्यों की परिषद् । दोनों सदनों में रियासतों के प्रतिनिध भी थे। छ : प्रान्तों बंगाल, मद्रास, बंबई, असम और संयुक्त प्रान्त में द्विसदनीय विधान मंडल शुरू हुए। ऐसा नहीं था की यह प्रभुत्व संपन्न थे , क्योंकि केंद्रीय विधानमंडल द्वरा पारित विधेयक को गवर्नर जनरल तो वीटो कर सकता था साथ ही सम्राट भी वीटो कजर सकता था। इसी प्रकार के बंधन प्रांतीय विधान मंडलों पर भी लगाये गये थे ।

केंद्र व प्रान्त के बीच विधि शक्तियों का बंटवारा -

यह बटवारा तीन प्रकार से किया गया था। जिसमें पहली सूची परिसंघ सूची थी जिस पर संघ को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त थी। विदेश,मुद्रा, सेना, जनगणना जैसे विषय इस सूची में शामिल थे। प्रांतीय सूची पर प्रांतीय विधान मंडल कानून बना सकते थे। इसके अंतर्गत पुलिस, प्रांतीय लोकसेवा और शिक्षा जैसे विषय सम्मिलित थे। एक सूची समवर्ती सूची थी जिस पर दोनों ही कानून बना सकते थे, दंड विधि, सिविल प्रक्रिया , विवाह और विवाह- विच्छेद, मध्यस्थ इसके विषय थे।

संघीय अदालत -

दो अलग अलग प्रान्तों, केंद्र और प्रान्तों के बीच विवाद को निपटने के लिए दिल्ली में संघीय अदालत की स्थापना की गयी। जिसमें 1 मुख्य और 6 अन्य न्यायाधीश थे ।

इस अधिनियम ने पहली बार प्रत्यक्ष चुनाव की शुरुआत हुई। इस अधिनियम के तहत भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना हुई व संघीय रेलवे प्राधिकरण बनाया गया। 1929 के साइमन कमीशन में 'डोमिनियन प्रस्थिति' देने की बात की गयी थी परन्तु इस अधिनियम में इनका कोई जिक्र नहीं

था। यह अधिनियम इतना महत्वपूर्ण था कि स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधान में प्रतिस्थापित किया गया। परन्तु इसके पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था के कारण राष्ट्रीय एकता के निर्माण में बाधाएं आई।

1947 का भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम

यह अधिनियम भारतीयों के लम्बे संघर्ष का परिणाम था यह अधिनियम 5 जुलाई को संसद द्वारा पारित किया गया था व 18 जुलाई 1947 को इसे शाही स्वीकृति मिली। यह अधिनियम माउंटबैटन द्वारा तैयार किया गया। इस अधिनियम तहत ब्रिटिश सरकार से भारतीयों के सत्ता हस्तांतरित होनी थी। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के पालन में भारत शासन अधिनियम 1935 का भारत और पाकिस्तान (पूर्वी व पश्चिमी) में अनुकूलन आदेशों से संशोधित किया जिससे दोनों डोमिनियन में संविधान बनाने तक व्यवस्था हो सके।

1947 तक भारत ब्रिटिश नियंत्रण में था परन्तु इस अधिनियम ने स्थिति को बदल दिया और 15 अगस्त 1947 से भारत अधीनस्थ राज्य बन गया। देशी रियासतों पर ब्रिटिश सम्राट की प्रभुता और जनजातीय क्षेत्रों से संधि भी समाप्त हो गयी। ब्रिटिश सरकार और संसद का भारत के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं रहा और राज्यों के सचिव पद को भी समाप्त कर दिया गया। दोनों डोमिनियन के गवर्नर-जनरल संवैधानिक अध्यक्ष हो गये और संवैधानिक अध्यक्ष ही मंत्रियों की सलाह पर कार्य करते थे। अब दोनों डोमिनियन की संविधान सभा ने ही संविधान निर्माण के साथ-साथ विधायी कार्य भी किया। इस अधिनियम ने रियासतों को स्वतंत्र रहने या किसी संप्रभु में शामिल होने के लिए स्वतंत्र रखा।

1.5 संविधान सभा संविधान निर्माण

लोकतंत्र में नागरिकों और सरकार दोनों को कुछ बुनियादी नियमों का पालन करना होता है। ऐसे नियमों का दस्तावेज संविधान कहलाता है। यह आपसी भरोसा और सहयोग विकसित करता है और यह दिशा देता है कि सरकार का गठन कैसे होगा। भारत का संविधान बहुत कठिन परिस्थितियों में बना, भारत- पाक विभाजन में जन धन का भारी नुकसान हुआ था। उसी दौरान लम्बी गुलामी के बाद आजाद हुए भारत जैसे विशाल और विविधता भरे देश का संविधान बनाना संविधान निर्माताओं के लिए चुनौतिपूर्ण था। औपनिवेशिक शासन की राजनीतिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं को जानने से संविधान निर्माताओं को नई राजनीतिक व्यवस्था /संस्था बनाने में मदद मिली। भारतीय नेताओं ने स्वतंत्रता से पहले ही काफी चिंतन - मनन और बहसें कर ली थी कि भारत का स्वरुप आजादी के बाद कैसा होगा। दुनिया भर के संविधानों का अध्ययन कर उसकी अच्छाईयां अपने संविधान में ली। भारतीय संविधान नामक दस्तावेज को लिखने का काम जिस संस्था ने किया वह

चुने गये प्रतिनिधियों की सभा थी उसे संविधान सभा कहा गया। 1946 में संविधान सभा के गठन के लिए चुनाव हुआ। किसी लोकतान्त्रिक देश में संविधान-निर्माण का काम जनता के प्रतिनिधी संस्था द्वारा किया जाता है जिसे संविधान सभा कहा जाता है। भारत में संविधान सभा के विषय में विचार स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान आया। महात्मा गाँधी ने 1922 में मांग की कि भारतीय संविधान सभा का गठन भारतीयों द्वारा किया जाना चाहिए। 1928 की नेहरू रिपोर्ट में भी इस बात का जिक्र किया गया था कि भारत का भावी संविधान भारतियों द्वरा स्वयं तैयार किया जाना चाहिए। 1927 में जवाहर लाल नेहरू ने मद्रास अधिवेशन में नेहरु प्रस्ताव का ही परिवर्तित रूप पेश किया जो पुन: पारित हुआ। 19 मई 1928 में सर्वदलीय सम्मलेन ने भारत के संविधान के सिध्दांत निर्धारित करने के लिए मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समित नियुक्त की। 10 अगस्त 1928 को समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश की जिसे नेहरू रिपोर्ट कहा गया। यह भारतीयों द्वारा खुद संविधान बनाने का पहला प्रयास था। इस रिपोर्ट में संविधान के प्रारूप की रुपरेखा को शामिल किया गया था। बाद में भारतीय संविधान में नेहरू रिपोर्ट के कई प्रावधानों को सम्मिलित किया गया।

तीसरे गोलमेज सम्मलेन के बाद के श्वेतपत्र में भारत में संवैधानिक सुधारों के लिए प्रस्ताव दिए गये थे। प्रस्तावों पर विचार करने वाली समिति का मानना था कि भारत को अभी संविधायी शक्ति नहीं दी जा सकती। 1934 में कांग्रेस की कार्यकारणी ने घोषणा की कि व्यस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा संविधान तैयार किया जायेगा, पटना बैठक में यह प्रस्ताव स्वीकार हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के समय ब्रिटिश विरोध किया परन्तु बाद में परिस्थितियों से बाध्य होकर (युद्ध में भारतीयों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए) मानना पड़ा। 1935 का भारत शासन अधिनियम ने संविधान सभा की मांग को बल दिया। कांग्रेस ने संविधान सभा की मांग के मुद्दे पर प्रांतीय विधानमंडल के चुनाव लड़े और जीते भी। 1939 में गाँधी ने हरिजन में 'द ओनली वे' नामक लेख लिखा जिसमें संविधान सभा को एकमात्र साधन बताया जिससे लोगों की इच्छा और देशज प्रकृति को पूरा कर सकता है। 1940 में ब्रिटिश सरकार ने इस बात को माना कि भारत का संविधान भारत के लोगों द्वारा ही बनाया जायेंगे।

1.5.1 क्रिप्स मिशन

क्रिप्स प्रस्ताव में पहली बार ब्रिटिश सरकार ने सविधान सभा की मांग को स्वीकार किया। 1942 में ब्रिटिश सरकार ने सर स्तेफार्ड क्रिप्स को भारत भेजा जो निम्न प्रस्तावों को लेके आये -

- युद्ध के पश्चात् भारत को डोमिनियन स्टेटस दिया जायेगा।

- युद्ध के बाद भारत प्रभुत्व स्थिति वाला संघ बनेगा सभी प्रान्तों और देशी रियासतों से मिलकर एक संघ बनेगा, परन्तु अगर कोई रियासत इसके लिए तैयार नहीं है तो वह अपनी संवैधानिक स्थिति बनाये रखने के लिए स्वतंत्र होगा।
- भारत के संविधान के लिए संविधान सभा गठित की जाएगी , इसके सदस्य प्रांतीय विधान सभाओं के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित होंगे और रियासतों द्वारा मनोनीत होंगे।

इस प्रस्ताव पर कांग्रेस व मुस्लिम लीग दोनों ने आपत्ति जाहिर की। कांग्रेस ने स्वतंत्रता की जगह डोमिनियन स्टेटस पर सवाल उठाये। वहीँ मुस्लिम लीग ने अलग राज्य पाकिस्तान बनाने की बात की और क्रिप्स मिशन को ख़ारिज कर दिया। क्रिप्स प्रस्ताव के असफल होने के बाद दोनों दलों को एक करने के कई प्रयास हुए ,शिमला सम्मलेन किया गया जो असफल रहा। ब्रिटिश सरकार द्वारा 3 मंत्रिमंडल के सदस्यों का प्रतिनिधि मंडल भेजा गया जिसके हाथ भी असफलता लगी। 16 मई 1946 को प्रतिनिधिमंडल ने एक प्रस्ताव की घोषणा की जिसे कैबिनेट मिशन योजना के नाम से जाना जाता है। इस प्रस्ताव के माध्यम से भारत का संघ बनाने, विभाजन करने के मुद्दे पर समझौता करवाने का प्रयास किया गया।

1.5.2 कैबिनेट मिशन

ब्रिटिश सरकार ने भारत को सत्ता हस्तांतरण पर विचार करने के लिए फरवरी 1946 में कैबिनेट मिशन भारत भेजा। इसमें 3 सदस्य पेथिक लौरेंस (भारत सचिव), क्रिप्स (व्यापर बोर्ड के अध्यक्ष) और ए. वी. एलेक्जेंडर (नौसेना के प्रमुख) थे ।केबिनेट मिशन की दोनों राजनीतिक दलों से चर्चा, विचार-विमर्श हुआ, परन्तु वे एकमत नहीं हुए । इसलिए प्रतिनिधि मंडल ने अपनी ओर से परेशानियों का हल पेश किया। जिसे लार्ड वावेल और तीन प्रतिनिधियों द्वारा संयुक्त रूप से 16 मई 1946 को प्रकाशित किया गया। कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव सिफारिश की तरह थे। केबिनेट मिशन ने यह माना था कि दोनों दल इसे स्वीकार कर लेंगे। हुआ यह कि संविधान सभा के निर्वाचन में मुस्लिम लीग ने भाग लिया और उनके प्रत्याशी चुने भी गये लेकिन कैबिनेट के गुट सम्बन्धी खण्डों के बारे में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मतभेद हो गये। 6 दिसम्बर 1946 को ब्रिटिश सरकार ने एक कथन प्रकाशित किया कि " भारत की जनसँख्या के किसी बहुत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व यदि संविधान सभा में नहीं है तो ब्रिटिश सरकार ऐसे संविधान को उस भाग पर बलपूर्वक लागू नहीं करेगी।"

इस तरह से ब्रिटिश सरकार ने यह मान लिया कि दो राज्य व दो संविधान बन सकते हैं। 9 दिसम्बर 1946 की पहली संविधान की बैठक में मुस्लिमलीग के सदस्य उपस्थित नहीं हुए। 20 फरवरी 1947 ब्रिटिश सरकार ने एक और घोषणा की कि जून 1948 को भारत से ब्रिटिश शासन समाप्त कर

दिया जायेगा व सत्ता भारतीयों को सौंप दी जाएगी, तब तक यदि संविधान सभा संविधान बनाने में असफल रही तो ब्रिटिश सरकार विचार करेगी कि सत्ता हस्तांतरित की जाये या नहीं।

कैबिनेट मिशन योजना के द्वारा संविधान सभा के गठन का प्रारूप तैयार किया गया। इस योजना के अनुसार संविधान सभा के लिए 389 सदस्य लिए जायेंगे जिसमें से 296 सदस्य उन प्रान्तों से होंगे जहाँ ब्रिटिश सरकार का सीधा नियंत्रण था और 93 सदस्य देशी रियासतों से लिए जायेंगे। राज्यों को संविधान सभा में सीटें जनसँख्या के आधार पर आवंटित हुई। (10 लाख पर 1 सीट)

1.5.3 माउंटवेटेन योजना

इसके बाद लार्ड वावेल की जगह लार्ड माउंटवेटेन को भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया, जिससे सत्ता का हस्तांतरण शीघ्र हो सके। माउंटवेटेन ने कांग्रेस व मुस्लिमलीग के बीच समझौता करवाया ।माउंटवेटेन योजना के अनुसार पंजाब व बंगाल के समस्या वाले प्रान्तों का विभाजन किया जायेगा तब लीग को पाकिस्तान मिलेगा, कांग्रेस को शेष भारत जहाँ मुस्लिम अल्पमत में थे। भारतीय स्वतंत्रता की अंतिम योजना माउंटवेटेन योजना थी। इसमें विभाजन, स्वायत्ता, दोनों राष्ट्रों की सम्प्रभुता, अपना संविधान बनाने के अधिकार शामिल थे। जम्मू और कश्मीर जैसी रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने का विकल्प दिया गया। इस योजना के अनुसार , बंगाल और पंजाब की विधानसभाओं के सदस्यों ने बैठक की और विभाजन के लिए मतदान किया गया और धार्मिक आधार पर विभाजन का निर्णय लिया गया। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और सिलहट के मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में जनमत संग्रह हुआ और बलूचिस्तान और सिंध के लोगों ने भी बहुमत से पाकिस्तान में शामिल होने का मन बनाया।

1.5.4 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947

26 जुलाई 1947 को गवर्नर-जनरल ने पाकिस्तान के लिए संविधान बनाने की घोषणा की देरी किये बिना इसी योजना को आधार बनाकर भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 तैयार किया गया। जिसे 4 जुलाई को संसद पुनः स्थापित होकर 18 जुलाई 1947 को शाही अनुमति मिली। इससे दो डोमिनियन भारत व पाकिस्तान की स्थापना की गयी। संविधान सभा को संविधान निर्माण से सम्बंधित असीमित शक्तियां प्राप्त हुई। इस अधिनियम के तहत भारत को सिंध, बलोचिस्तान, पश्चिमी पंजाब , पूर्वी बंगाल, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और असम के सिलहट जिले को छोड़ कर भारत का शेष राज्य क्षेत्र मिला। दोनों संविधान सभाओं को अपने- अपने राज्य के कानून बनाने की शक्ति दी गयी। संविधान सभा को विधान मंडल के रूप में कार्य करने की शक्ति प्रदान की गयी।

1.6 संविधान सभा का गठन ,संविधान निर्माण और संविधान सभा की कार्य प्रणाली

भारत की संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 (सोमवार) को हुई। जिसमें सच्चिदानन्द सिन्हा को अस्थायी अध्यक्ष चुना गया। 11 दिसम्बर को राजेन्द्र प्रसाद को अध्यक्ष व एच. सी. मुखर्जी को उपाध्यक्ष चुना गया।13 दिसम्बर 1946 को जवाहरलाल नेहरु ने उद्देशय प्रस्ताव पेश किया। इसी प्रस्ताव में भावी भारत के लिए लोकतान्त्रिक गणराज्य की रूपरेखा दी गयी थी। 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा ने इसी प्रस्ताव को स्वीकार किया। बी. एन. राव को संवैधानिक सलाहकार नियुक्त किया गया। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. बी. आर. आम्बेडकर थे। विभाजन के बाद संविधान सभा की बैठक 14 अगस्त 1947 को हुई। अब सदस्यों की संख्या में बदलाव आ गया विभाजन के बाद 299 सदस्य हो गये और आम्बेडकर को बंगाल से चुना गया। संविधान निर्माण कार्य के पूर्ण होने पर 26 नवम्बर 1949 को 284 सदस्यों ने हस्ताक्षर किये। हांलाकि संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ, परन्तु कुछ प्रावधान जैसे नागरिकता , चुनाव आदि 26 नवम्बर से ही लागू हो गये थे।

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 को हुई। संविधान निर्माण की शुरुआत 13 दिसम्बर 1946 से हुई जब जवाहर लाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव पढ़ा । यही प्रस्ताव संविधान की रुपरेखा थी जिसके आधार पर संविधान का निर्माण होना था। जहाँ इसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय की बात कही गयी थी वहीं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अवसर और कानून के समक्ष समानता की गारंटी दी गयी थी। इस प्रस्ताव ने संविधान सभा को मार्गदर्शी सिध्दांत तथा दर्शन दिया, जिनके आधार पर संविधान का निर्माण होना था । संविधान सभा ने संविधान निर्माण में विभिन्न पहलुओं को गौर से देखने के लिए अनेक समितियां नियुक्त की। इनमें प्रारूप समिति , संघ संविधान समिति, प्रांतीय संविधान समिति , मूलाधिकारों, अल्पसंख्यकों से सम्बंधित समिति आदि थी । इन समितियों ने बड़ी मेहनत से सुनियोजित ढंग से काम किया।

प्रारूप समिति ने संविधान का प्रारूप 21 फरवरी 1948 को अध्यक्ष को पेश किया। इस प्रारूप के संशोधन के लिए बहुत सी टिप्पड़ियां, आलोचनाएँ और सुझाव मिले जिन पर विशेष समिति द्वारा विचार किया गया। संसोधन के बाद संविधान के प्रारूप को 26 अक्टूबर 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को पेश किया गया। नवम्बर 1948 से नवम्बर 1949 के बीच उस पर फिर विचार किया गया। प्रस्तावना सबसे बाद में स्वीकार की गयी। 26 नवम्बर 1949को प्रस्ताव स्वीकृत हुआ 284 सदस्यों ने हस्ताक्षर किये।

संविधान सभा में कांग्रेस का बहुमत था, जिसमें नेहरू, पटेल,आजाद आदि की अहम् भूमिका थी। लेकिन संविधानसभा में डॉ. आम्बेडकर , डॉ. राधाकृष्णन, प्रो. के.टी. शाह जैसे गैर-कांग्रेसी नेता भी थे। संविधान सभा में हर एक पक्ष पर गहन विचार- विमर्श करने व आम सहमती पर निर्णय लेने का प्रयास किया गया। किसी विशेष विचार को महत्त्व देने के बजाय उन को वारयिता दी गयी जो भारत के लिए अनुकूल थे। संविधान निर्माताओं ने शासन प्रणाली का मूल आधार उदारवादी , उद्देश्य समाजवादी रखे । गांधीवादी आदर्श नीतिनिदेशक तत्वों के शामिल किये।

अभ्यास प्रश्न

1 संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष कौन थे?

2 भारतीय संविधान सभा की पहली बैठक कब हुई?

3 भारतीय संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष कौन थे?

4 किस अधिनियम द्वारा केंद्र में द्वैध शासन लागू किया गया?

5 कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा में सदस्य संख्या कितनी थी?

6 भारत का संविधान कब बनकर तैयार हुआ?

7 भारत का संविधान कब लागू हुआ?

1.7 सारांश

भारत का संविधान लिखित, व्यापक तथा उदारवादी है। उदारवादी होने से मतलब सामाजिक न्याय से है, भारतीय संविधान ने समाज के वंचित लोगों जिनके साथ लम्बे समय से अन्याय हुआ है, उनके लिए उदारवादी नीतियाँ अपनाई है जैसे आरक्षण आदि। जिस समय संविधान का निर्माण कार्य चल रहा था वह समय व स्थितियां सामान्य नहीं थी। भारत विभाजन की त्रासदी झेल रहा था और गुलामी के दौर से निकला ही था। फिर भी विपरीत परिस्थितियों में संविधान निर्माताओं ने एक ऐसा संविधान देश को दिया जिसमें लोकतान्त्रिक, उदारवादी, समाजवादी मूल्य विद्यमान हैं । भारतीय संविधान ने गणराज्य की स्थापना की। दुनिया भर के देशों के संविधानों से बेहतरीन पहलुओं को लेकर भारतीय संविधान को संपन्न बनाने का कार्य किया गया। संवैधानिक मूल्य भारत के संविधान में हर जगह प्रतिविम्बित होते हैं। औपनिवेशिक शासन की राजनीतिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं को जानने से संविधान निर्माताओं को नई राजनीतिक व्यवस्था /संस्था बनाने में मदद मिली। भारतीय नेताओं ने स्वतंत्रता से पहले ही काफी चिंतन - मनन और बहसें कर ली थी कि भारत का स्वरुप

आजादी के बाद कैसा होगा। भारतीय संविधान सभा की महत्वपूर्ण समितियों ने कड़ी मेहनत से हर पक्ष पर विचार विमर्श करने का प्रयास किया और संविधान को मजबूत रूप दिया। ब्रिटिश शासन काल के विभिन्न अधिनियमों ने भी संविधान का विकास में अपना योगदान किया जिसमें 1935 का भारत शासन अधिनियम सबसे महत्वपूर्ण है।

1.8 शब्दावली

द्वैध शासन - दोहरा शासन।

कॉन्टिनेंटल सिस्टम - यूरोप में फ्रांसिसी सहयोगियों में ब्रिटिश माल के आयत पर रोक लगा दी।

औपनिवेशिक शासन - एक विदेशी राजनीतिक सत्ता द्वारा किसी देश की प्रभुसत्ता पर राज करना।

1.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. डॉ. बी आर. आम्बेडकर 2. 9 दिसम्बर 1946 3. राजेन्द्र प्रसाद 4.भारत शासन अधिनियम 1935 5. 389 6. 26 नवम्बर 7. 26 जनवरी

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हमारा संविधान भारत का संविधान और संवैधानिक विधि- सुभाष कश्यप, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
2. भारत का संविधान एक परिचय- डॉ दी . दी बसु, लेक्सिसनेक्सिस, नागपुर
3. भारत की राजव्यवस्था- एम. लक्ष्मीकांत, मैकग्राहिल पब्लिकेशन
4. https://hindi.lipleaders.in/the-history-and-development-of-the-constitution-of-india/
5. https://byjus.com/free-ias-prep/ncert-notes-charter-act-1813/

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री

काश्यप सुभाष, हमारा संविधान, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट

बसु, दी .दी , भारत का संविधान - एक परिचय, नागपुर, वाधवा

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में भारत के संवैधानिक विकास पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
2. भारतीय संविधान के निर्माण में संविधान सभा की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

इकाई 2: संविधान निर्माण, संविधान के स्रोत

2.1. प्रस्तावना
2.2. उद्देश्य
2.3. संविधान का निर्माण
2.3.1 संविधान सभा की मांग
2.3.2 संविधान सभा का निर्माण
2.3.3 संविधान निर्माण की प्रक्रिया
2.4 संविधान के स्रोत
2.4.1 संविधान के देशी अथवा भारतीय स्रोत
2.4.2 संविधान के विदेशी स्रोत
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारत जैसे विशाल और विविधता भरे देश के लिए संविधान बनाना आसान नहीं था। भारत के लोग तब गुलाम की हैसियत से निकल कर नागरिक की हैसियत पाने जा रहे थे। देश ने धर्म के आधार पर हुए बटवारे की विभीषिका झेली थी। विभाजन से जुडी हिंसा में सीमा के दोनों तरफ कम से कम दस लाख लोग मारे जा चुके थे। एक बड़ी समस्या और भी थी। अंग्रेजो ने देशी रियासतों के शासकों को यह आजादी दे दी थी कि वे भारत या पाकिस्तान जिसमें इच्छा हो अपनी रियासतों का विलय कर दे या स्वतंत्र रहें। इन रियासतों का विलय मुश्किल और अनिश्चय भरा काम था। जब संविधान लिखा जा रहा था तब देश का भविष्य उतना सुरक्षित और चैन भरा नहीं लगता था, जितना आज है। संविधान निर्माताओं को देश के वर्तमान और भविष्य की चिंता थी।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

1.संविधान सभा के बारे में समझ सकेंगे।

2.भारतीयों द्वारा स्वयं अपना संविधान निर्माण की विभिन्न मांगो और प्रयासों को जान गये होंगे।

3.संविधान निर्माण की प्रक्रिया को जान सकेंगे।

4.संविधान में भारतीय स्रोत के बारे में समझ सकेंगे।

5.संविधान के विदेशी स्रोत के बारें में समझ सकेंगे।

2.3 संविधान सभा की मांग

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के बाद भारतीयों में राजनीतिक चेतना जाग्रत हुई और धीरे-धीरे भारतीयों की यह धारणा बनने लगी कि भारत के लोग स्वयं अपने राजनीतिक भविष्य का निर्णय करें। इसकी अभिव्यक्ति बालगंगाधर तिलक की उस नारे से होती है कि ''स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेंगे।'' इसकेपश्चातमहात्मा गाँधी ने 1922 में यह मांग की थी कि भारत का राजनैतिक भाग्य भारतीय स्वयं बनायेंगे। 1924 में मोतीलाल नेहरू द्वारा ब्रिटिश सरकार से यह मांग की गयी कि भारतीय संविधान के निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन किया जाय। कानूनी आयोग और राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस की असफलता के कारण भारतवासियों की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत शासन अधिनियम, 1935 अधिनियम किया गया। इससे भारत के लोगो की इस मांग ने जोर पकडा़ कि वे बाहरी हस्तक्षेप के बिना संविधान बनाना चाहते है, इस मांग को कांग्रेस ने 1935 में प्रस्तुत किया। 1938 में पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा की मांग को स्पष्ट रखते हुए यह कहा -

''कांग्रेस स्वतंत्र और लोकतंत्रात्मक राज्य का समर्थन करती है। उसने यह प्रस्ताव किया कि स्वतंत्र भारत का संविधान बिना बाहरी हस्तक्षेप के ऐसी संविधान सभा द्वारा बनाया जाना चाहिए, जो वयस्क मतदान के आधार पर निर्वाचित हो।''

1939 में विश्व युद्ध छिड़ने के बाद, संविधान सभा की मांग को 14 सितंबर, 1939 को कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा जारी किए गये एक लंबे वक्तव्य में दोहराया गया। गॉधी जी ने 19 नवम्बर, 1939 को 'हरिजन' में 'द ओनली वे' शीर्षक के अन्तर्गत एक लेख लिखा, जिसमें उन्होनें अपने विचार व्यक्त किया कि ''संविधान सभा ही देश की देशज प्रकृति का और लोकेच्छा का सही अर्थों में तथा पूरी तरह से निरूपण करने वाला संविधान बना सकती है'' उन्होंने घोषणा की कि साम्प्रदायिकता तथा अन्य समस्याओं के न्यायसंगत हल का एकमात्र तरीका भी संविधान सभा ही है।

1940 के 'अगस्त प्रस्ताव' में ब्रिटिश सरकार ने संविधान सभा की मांग को पहली बार आधिकारिक रूप से स्वीकार किया भले ही स्वीकृति अप्रत्यक्ष शर्तो के साथ थी।

2.3.2 संविधान सभा का निर्माण

ब्रिटिश सरकार ने द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ तक संविधान सभा की मांग का विरोध किया, विश्व युद्ध के प्रारम्भ हो जाने पर बाहरी परिस्थितियों के कारण उन्हें यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पडा कि भारतीय संवैधानिक समस्या का हल निकालना अति आवश्यक है। 1940 में इंग्लैण्ड में बहुदलीय सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया कि भारत के लिए नया संविधान भारत के लोग ही बनाऐंगे। मार्च, 1942 में जब जापान भारत के द्वार पर आ गया। तब उन्होंने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को

जो मंत्रिमण्डल के एक सदस्य थे। ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव की घोषणा के प्रारूप के साथ भेजा। ये प्रस्ताव युद्ध की समाप्ति पर अंगीकार किये जाने वाले थे यदि (कांग्रेस और मुस्लिम लीग) दो प्रमुख राजनीतिक दल उन्हें स्वीकार करने के लिए सहमत हो जायें।

मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार थे

1. भारत के संविधान की रचना भारत के लोगो द्वारा निर्वाचित संविधान सभा करेगी।

2. संविधान भारत को डोमिनियन प्रास्थिति और ब्रिटिश राष्ट्रकुल में बराबर की भागीदारी देगा।

3. सभी प्रान्तो और देशी रियासतों से मिलकर एक संघ बनेगा, किन्तु

4. कोई प्रान्त या (देशी रियासत) जो संविधान को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो तत्समय विद्यमान अपनी संविधानिक स्थिति बनाए रखने के लिए स्वतंत्र होगा और इस प्रकार सम्मिलित न होने वाले प्रान्तों से ब्रिटिश सरकार पृथक संवैधानिक व्यवस्था कर सकेगी।

किन्तु दोनों राजनीतिक दल इन प्रस्तावो को स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं हो सके।

क्रिप्स के प्रस्तावों के अस्वीकार हो जाने के पश्चात (और क्रांग्रेस द्वारा ''भारत छोडो'' आन्दोलन प्रारम्भ करने के बाद) दोनों दलों को एकमत करने के लिए बहुत से प्रयत्न किए गए, जिनमे गवर्नर-जनरल, लार्ड वावेल की प्रेरणा से किया गया शिमला सम्मेलन भी है। इन सब के असफल हो जाने पर ब्रिटिश मंत्रिमण्डल ने अपने तीन सदस्यों को एक और गंभीर प्रयत्न करने के लिए भेजे। उनमें क्रिप्स भी था, किन्तु यह प्रतिनिधि मण्डल भी दोनों प्रमुख राजनीतिक दलों के बीच सहमति लाने में असफल रहा। परिणामस्वरूप उसे अपने ही प्रस्ताव रखने पड़े। जिनकी भारत और इंग्लैण्ड में 16 मई, 1946 को एक साथ घोषणा की गई।

मंत्रिमण्डलीय प्रतिनिधि मण्डल के प्रस्ताव में भारत का संघ बनाने और उसका विभाजन करने के बीच समझौता लाने का प्रयत्न किया गया। मंत्रिमण्डलीय प्रतिनिधिमण्डल ने पृथक संविधान सभा और मुसलमानों के लिए पृथक राज्य के दावे को स्पष्टतः नामंजूर कर दिया। जिस स्कीम की सिफारिश उन्होंने की उसमें मुस्लिम लीग के दावे के पीछे जो सिद्धान्त था उसको लगभग स्वीकार कर लिया गया।

उस स्कीम के मुख्य लक्ष्य ये थे-

1. एक भारत संघ होगा, जो ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों से मिलकर बनेगा, जिसकी विदेश कार्य, प्रतिरक्षा और संचार के विषयों पर अधिकारिता होगी। शेष सभी शक्तियॉ प्रान्तो और राज्यों में निहित होंगी।

2. संघ की एक कार्यपालिका और एक विधानमण्डल होगा जो प्रान्तों और राज्यों के प्रतिनिधियों से गठित होगा, किन्तु जब विधान मण्डल में कोई प्रमुख साम्प्रदायिक प्रश्न उठेगा तो उसका विनिश्चय दोनों प्रमुख समुदायों के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जायेगा।

प्रान्त उस बात के लिए स्वतंत्र होंगे कि वे कार्यपालिका और विधानमण्डलों के गुट बना लें और प्रत्येक गुट उन प्रान्तीय विषयों को अवधारित करने के लिए सक्षम होगा जिन पर गुट संगठन की अधिकारिता होगी।

जुलाई, 1945 में इंग्लैण्ड में नई लेबर सरकार सत्ता में आयी। तब 19 सितम्बर, 1945 को वायसराय लार्ड वेवल ने भारत के संबन्ध में सरकार की नीति की घोषणा की तथा 'यथाशीघ्र' संविधान-निर्माण निकाय का गठन करने के लिए महामहिम की सरकार के इरादे की पुष्टि की।

कैबिनेट मिशन ने अनुभव किया कि संविधान-निर्माण निकाय का गठन करने की सर्वाधिक संतोषजनक विधि यह होती कि उसका गठन वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव के द्वारा किया जाता, किन्तु ऐसा करने पर नए संविधान के निर्माण में 'अवांछनीय विलम्ब' हो जाता। इसलिए उनके अनुसार एकमात्र व्यवहार्य तरीका यही था कि हाल में निर्वाचित प्रान्तीय सभाओं का उपयोग निर्वाचन निकायों के रूप में किया जाए। तत्कालीन परिस्थितियों में मिशन ने इसे ''सर्वाधिक न्यायोचित तथा व्यवहार्य योजना'' बताया और सिफारिश की कि संविधान-निर्माण-निकाय में प्रान्तों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर हो। मोटे तौर पर दस लाख लोगों के पीछे एक सदस्य चुना जाए और विभिन्न प्रान्तों को आवंटित स्थान इस प्रयोजन के लिए वर्गीकृत मुख्य समुदायों यथा सिक्खों, मुसलमानों और सामान्य लोगों में (सिक्खों तथा मुसलमानों का छोड़कर) उनकी जनसंख्या के आधार पर विभाजित कर दिए जाए। प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधि प्रान्तीय विधान सभा में उस समुदाय के सदस्यों द्वारा चुने जाते थे। और मतदान एकल संक्रमणीय मत सहित अनुपाती प्रतिनिधित्व की विधि द्वारा कराया जाना था। भारतीय रियासतों के लिए आवंटित सदस्यों की संख्या भी जनसंख्या के उसी आधार पर निर्धारित की जानी थी, जो ब्रिटिश भारत के लिए अपनाया गया था, किन्तु उनके चयन की विधि बाद में परामर्श द्वारा तय की जानी थी। संविधान निर्माण-निकाय की सदस्य संख्या 389 निर्धारित की गई। जिनमें से 292 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के गवर्नरों के अधीन ग्यारह प्रान्तों से, 4 चीफ कमिश्नरों के चार प्रान्तों अर्थात दिल्ली, अजमेर-मारवाड़, कुर्ग और ब्रिटिश बलूचिस्तान से एक-एक तथा 93 प्रतिनिधि भारतीय रियासतों से लिये जाने थे।

कैबिनेट मिशन ने संविधान के लिए बुनियादी ढाँचे का प्रारूप पेश किया तथा संविधान -निर्माण-निकाय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का कुछ विस्तार के साथ निर्धारण किया।

ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को आवंटित 296 स्थानों के लिए चुनाव जुलाई-अगस्त, 1946 तक पूरे कर लिए गये थे। कांग्रेस को 208 स्थानों पर जिनमें नौ को छोड़कर शेष 73 स्थानों पर विजय प्राप्त हुय

ब्रिटिश भारत की विधानसभाओं से चुने गये सदस्यों का पार्टीवार ब्यौरा इस प्रकार थाः-

कांग्रेस	208
मुस्लिम लीग	73
युनियनिस्ट	1
युनियनिस्ट मुस्लिम	1
युनियनिस्ट अनुसूचित जातियां	1
कृषक प्रजा	1
अनुसूचित जाति परिसंघ	1
सिक्ख (गैस कांग्रेसी)	1
कम्युनिस्ट	1
स्वतन्त्र	1
	8
	296

कहा जा सकता है कि 14-15 अगस्त, 1947 को देश के विभाजन तथा उसकी स्वतन्त्रा के साथ ही, भारत की संविधान सभा कैबिनेट मिशन योजना के बंधनो से मुक्त हो गई। और एक पूर्णतया प्रभुत्तासम्पन्न निकाय तथा देश में ब्रिटिश संसद के पूर्ण अधिकार तथा उसकी सत्ता की पूर्ण उत्तराधिकारी बन गई। इसके अलावा, 3 जून की योजना की स्वीकृति के बाद, भारतीय डोमिनियन के मुस्लिम लीग पार्टी के सदस्यों ने भी विधानसभा में अपने स्थान ग्रहण कर लिये। कुछ भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि पहले ही 28 अप्रैल, 1947 को विधान सभा में आ गए और शेष रियासतों ने भी यथासमय अपने प्रतिनिधि भेज दिए।

इस प्रकार संविधान सभा भारत में सभी रियासतों तथा प्रान्तों की प्रतिनिधि तथा किसी भी बाहरी शक्ति के आधिपत्य से पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न निकाय बन गयी। संविधान सभा भारत में लागू ब्रिटिश संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून को, यहॉ तक कि भारतीय स्वतंत्रता एक्ट को भी रद्द अथवा परिवर्तित कर सकती थी।

2.3.3 संविधान निर्माण की प्रक्रिया

संविधान सभा का उद्घाटन नियत दिन सोमवार, 09 दिसम्बर, 1946 को प्रातः ग्यारह बजे हुआ। संविधान सभा का सत्र कुछ दिन चलने के बाद नेहरू जी ने 13 दिसम्बर, 1946 ऐतिहासिक उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया। सुन्दर शब्दों में तैयार किये गये उद्देश्य प्रस्ताव के प्रारूप में भारत के भावी प्रभुत्तासम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की रूपरेखा दी गई थी। इस प्रस्ताव में एक संघीय राज्य व्यवस्था की परिकल्पना की गई थी, जिसमें अवशिष्ट शक्तियां स्वायत्त इकाइयों के पास होती तथा प्रभुत्ता जनता के हाथों में। सभी नागरिको को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, न्याय, परिस्थिति की, अवसर भी और कानून के समक्ष समानता, विचारधारा, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था, पूजा, व्यवसाय, संगत और कार्य की स्वतन्त्रता, की गारंटी दी गई और इसके साथ ही अल्पसंख्यकों, पिछड़े तथा जनजातीय क्षेत्रों तथा दलितों और अन्य पिछड़े वर्गो के लिए पर्याप्त 'रक्षा उपाय' रखे गये। इस प्रकार, इस प्रस्ताव ने संविधान सभा को इसके मार्गदर्शी सिद्धान्त तथा दर्शन दिए, जिनके आधार पर इसे संविधान निर्माण का कार्य करना था। अन्ततः 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

संविधान सभा ने संविधान रचना की समस्या के विभिन्न पहलुओं से निपटने के लिए अनेक समितिया नियुक्त की। इनमें संघीय संविधान समितिया शामिल थी। इनमें से कुछ समितियों के अध्यक्ष नेहरू या पटेल थे, जिन्हें संविधान सभा के अध्यक्ष ने संविधान का मूल आधार तैयार करने का श्रेय दिया था। इन समितियों ने बड़े परिश्रम के साथ तथा सुनियोजित ढंग से कार्य किया और अनमोल रिपोर्ट पेश की। संविधान सभा ने तीसरे तथा छठें सत्रों के बीच, मूल अधिकारों, संघीय संविधान, संघीय शक्तियों, प्रान्तीय संविधान अल्पसंख्यको तथा अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जातियो से सम्बन्धित समितियों की रिपोर्टो पर विचार किया।

भारत के संविधान का पहला प्रारूप संविधान सभा कार्यालय की मंत्रणा शाखा ने अक्टूबर, 1947 को तैयार किया। इस प्रारूप की तैयारी से पहले, बहुत सारी आधार सामग्री एकत्र की गई तथा संविधान सभा के सदस्यों को 'संवैधानिक पूर्वदृष्टांत' के नाम से तीन संकलनों के रूप में उपलब्ध की गई। इस संकलनों में लगभग 60 देशों के संविधानों से मुख्य अंश उद्धृत किए गये थे। संविधान सभा ने संविधान सभा में किए गये निर्णयों पर अमल करते हुए संवैधानिक सलाहकार द्वारा तैयार

किए गये भारत के संविधान के मूल पाठ के प्रारूप की छानबीन करने के लिए 29 अगस्त, 1947 को डा0 भीमराव अंबेडकर के सभापतित्व में प्रारूप समिति नियुक्त की।

प्रारूपण समिति द्वारा तैयार किया गया भारत के संविधान का प्रारूप 21 फरवरी, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को पेश किया गया। संविधान के प्रारूप में संशोधन के लिए बहुत बड़ी संख्या में टिप्पणियां, आलोचनाएं, और सुझाव प्राप्त हुए। प्रारूपण समिति ने इन सभी पर विचार किया। इन सभी पर प्रारूपण समिति की सिफारिशों के साथ विचार करने के लिए एक विशेष समिति का गठन किया। विशेष समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर प्रारूपण समिति ने एक बार फिर विचार किया और कतिपय संशोधन समावेश के लिए छांट लिए गये। इस प्रकार के संशोधनों के निरीक्षण की सुविधा के लिए प्रारूप समिति ने संविधान के प्रारूप को दोबारा छपवाकर जारी करने का निर्णय किया। यह 26 अक्टूबर, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को पेश किया गया।

संविधान के प्रारूप पर खंडवार विचार 15 नवम्बर, 1948 से 17 अक्टूबर 1949 के दौरान पूरा किया गया। प्रस्तावना सबसे बाद में स्वीकार की गई। तत्पश्चात्, प्रारूपण समिति ने परिणामी या आवश्यक संशोधन किए, अंतिम प्रारूप तैयार किया और उसे संविधान सभा के सामने पेश किया।

संविधान का दूसरा वाचन 16 नवम्बर, 1949 को पूरा हुआ तथा उससे अगले दिन संविधान सभा ने डॉ0 अम्बेडकर के इस प्रस्ताव के साथ कि विधानसभा द्वारा यथानिर्णीत संविधान पारित किया जाए, संविधान का तीसरा वाचन शुरू किया। प्रस्ताव 26 नवम्बर 1949 को स्वीकृत हुआ तथा इस प्रकार, उस दिन संविधान सभा में भारत की जनता ने भारत के प्रभुत्व सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य का संविधान स्वीकार किया, अधिनियमित किया और अपने आपको अर्पित किया। संविधान सभा ने संविधान बनाने का भारी काम दो वर्ष ,ग्यारह माह, अठारह दिन में पूर्ण किया ।

संविधान पर संविधान सभा के सदस्यों द्वारा 24 जनवरी, 1950 को संविधान सभा के अन्तिम दिन अन्तिम रूप से हस्ताक्षर किए गए।

संविधान निर्माताओं ने पुराने संस्थानों के आधार पर जो पहले से विकसित हो चुके थे और जिनके बारें में उन्हें जानकारी थी, जिनसे वे परिचित हो चुके थे और जिनके लिए उन्होंने सभी प्रकार की परिसीमाओं, बंधनों के बावजूद उद्यम किया था, नए संस्थानों का निर्माण करना पसंद किया। संविधान के द्वारा ब्रिटिश शासन को ठुकरा दिया गया किन्तु उन संस्थानों को नहीं जो ब्रिटिश शासनकाल में विकसित हुए थे। इस प्रकार, संविधान औपनिवेशिक अतीत से पूरी तरह से अलग नहीं हुआ।

संविधान सभा ने और भी कई महत्वपूर्ण कार्य किए जैसे उसने संविधायी स्वरूप के कतिपय कानून पारित किए, राष्ट्रीय ध्वज को अंगीकार किया, राष्ट्रगान की घोषणा की, राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से संबंधित निर्णय की पुष्टि की तथा गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति का चुनाव किया।

अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संवधान के निर्माण में संविधान सभा के महत्व का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2. भारतीय संविधान के निर्माण की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।

3. संविधान सभा के निर्माण की प्रक्रिया को समझाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष थेः-

(अ) डॉ0 भीमराव अम्बेडकर (ब) महात्मा गाँधी

(स) डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद (द) डॉ0 सच्चिदानन्द सिन्हा

2. कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा में सदस्यों की संख्या निर्धारित की गईः-

(अ) 250 (ब) 389 (स) 350 (द) 420

3. भारत का संविधान बनाने में समय लगाः-

(अ) 4 वर्ष 3 माह 15 दिन (ब) 02 वर्ष 11 माह 18 दिन (स) 3 वर्ष 9 माह 10 दिन (द) 1 वर्ष 11 माह 18 दिन

4. भारत के संविधान को किस तिथि को स्वीकार किया गयाः-

(अ) 26 नवम्बर 1950 (ब) 26 जनवरी 1949 (स) 26 नवम्बर 1949 (द) 26 जनवरी 1950

5. भारत में सर्वोच्च माना गया हैः-

(अ) राष्ट्रपति को (ब) न्यायपालिका को (स) संविधान को (द) संसद को

2.4. संविधान के स्रोत

भारत के संविधान सभा ने जिस संविधान का निर्माण किया वह मौलिक न होकर व्यवहारिक है। अर्थात; भारतीय संविधान निर्माताओं ने मौलिक संविधान की रचना न करके संसार के विभिन्न संविधानों के अच्छे गुणों को ग्रहण करके एक व्यवहारिक संविधान की रचना की है। इसके कुछ आलोचकों ने भारतीय संविधान को 'उधार का थैला', भानुमति के कुनबे की तरह गड़बड, ''कैंची और गोंद की खिलवाड़'' आदि अनेक नामों की संज्ञा दी है।

संविधान निर्माताओं ने इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि वे नितान्त स्वतन्त्र रूप से या एकदम नए सिरे से संविधान लेखन नहीं कर रहे। उन्होंने जान-बूझकर यह निर्णय लिया था अतीत की उपेक्षा न करके पहले से स्थापित ढाँचे तथा अनुभव के आधार पर ही संविधान को खड़ा किया जाय। भारत के संविधान का एक समन्वित विकास हुआ। यह विकास कतिपय प्रयासों के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम था। स्वाधीनता के लिए छेड़े गये राष्ट्रवादी संघर्ष के दौरान प्रतिनिधिक एवं उत्तरदायी शासन संस्थाओं के लिए विभिन्न मांगे उठाई गयी। और अंग्रेज शासकों ने बडी़ कंजूसी से समय-समय पर थोड़े-थोड़े संवैधानिक सुधार किए। प्रारम्भिक अवस्था में यह प्रक्रिया अति अविकसित रूप में थी, किन्तु राजनीतिक संस्थान-निर्माण, विशेष रूप से आधुनिक विधानमण्डलो का सूत्रपात 1920 के दशक के अंतिम वर्षो में हो गया था। वास्तव में, संविधान के कुछ उपबन्धों के स्रोत तो भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा अंग्रेजी राज के शैशवकाल में ही खोजे जा सकते है।

2.4.1 भारतीय संविधान के देशी अथवा भारतीय स्रोतः

भारतीय संविधान के राज्य के नीति-निर्देशक तत्वो के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों के संगठन का उल्लेख स्पष्ट रूप से प्राचीन भारतीय स्वशासी संस्थानों से प्रेरित होकर किया गया था। 73 वें तथा 74 वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने उन्हें अब और अधिक सार्थक तथा महत्वपूर्ण बना दिया है। मूल अधिकारो की मांग सबसे पहले 1918 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मुंबई अधिवेशन में की गयी थी।

भारत के राज्य-संघ विधेयक में, जिसे राष्ट्रीय सम्मेलन ने 1925 में अंतिम रूप दिया था, विधि के समक्ष समानता, अभिव्यक्ति, सभा करने और धर्म पालन की स्वतन्त्रता जैसे अधिकारों की एक विशिष्ट घोषणा सम्मिलित थी। 1927 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसमें मूल अधिकारों की मांग को दोहराया गया था। सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा 1928 में नियुक्त मोतीलाल नेहरू कमेटी ने घोषणा की थी कि भारत की जनता का सर्वोपरि लक्ष्य न्याय सीमा के अधीन मूल मानव अधिकार प्राप्त करना है। उस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत का भावी संविधान अपने स्वरूप में संघीय होगा। उसमें देशी रियासतों अथवा भारतीय राज्यों को अलग से अस्तित्व नहीं मिलेगा तथा उन्हें संघ में शामिल होना होगा। नेहरू रिपोर्ट में संसदात्मक

शासनप्रणाली अपनाये जाने का प्रावधान था। नेहरू कमेटी की रिपोर्ट में जो उन्नीस मूल अधिकार शामिल किए गये थे, उनमें से दस को भारत के संविधान में बिना किसी खास परिवर्तन के शामिल कर लिया गया। 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में पारित किए गये प्रस्ताव में न केवल मूल अधिकारों का बल्कि मूल कर्तव्यों का भी विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया था। इसमें वर्णित अनेक सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों को संविधान के नीतिनिर्देशक तत्वों में समाविष्ट कर लिया गया था। मूल संविधान में मूल कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था किन्तु बाद में 1976 में संविधान (42 वां) संशोधन अधिनियम द्वारा इस विषय पर एक नया अध्याय संविधान में जोड़ दिया गया था।

भारतीय संविधान पर 1935 के भारत के शासन अधिनियम का प्रभाव सर्वाधिक परिलक्षित होता है। राबर्ट एल. हार्डग्रेव के अनुसार भारतीय संविधान के अनुच्छेदों में से लगभग 250 अनुच्छेद ऐसे है जो 1935 के अधिनियम से या तो अच्छरशः ले लिए गये है या फिर उसको थोड़ा-बहुत संशोधन करके परिवर्तन कर दिया गया है। डॉ0 पंजाबी राव देशमुख ने तो यहॉ तक कह दिया है कि नवीन संविधान 1935 का भारत शासन अधिनियम ही है। इसमे केवल वयस्क मताधिकार को जोड़ दिया गया है। वर्तमान संविधान के कुछ मुख्य उपबन्ध थे जो 1935 के अधिनियम के मुख्य सिद्धान्तों से समानता रखते है, जैसे संविधान में सूचियों के आधार पर शक्ति विभाजन, द्विसदनात्मक विधानमण्डल की व्यवस्था, राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने की व्यवस्था, राज्यपाल पद की व्यवस्था आदि।

अनुच्छेद 251, 256,352,356 इत्यादि 1935 के भारत शासन अधिनियम के ही समान है।

2.4.2 भारतीय संविधान के विदेशी स्रोत

देशी स्रोतों के अलावा संविधान सभा के सामने विदेशी संविधानों के अनेक नमूने थे जिनसे अच्छी बातों को अपनाया गया जैसे-

1.ब्रिटेन के संविधान से संसदीय प्रणाली, विधि-निर्माण प्रक्रिया तथा एकल नागरिकता को ग्रहण किया गया। न्यायिक आदेशो तथा संसदीय विशेषाधिकारों के विवाद से सम्बन्धित उपबन्धों के परिधि तथा उनके विस्तार को समझने के लिए अभी भी ब्रिटिश संविधान का सहारा लेना पडता है।

2.आयरलैण्ड के संविधान से राज्य के नीतिनिर्देशक तत्व राष्ट्रपति के चुनाव के लिए निर्वाचक मण्डल तथा राज्यसभा एवं विधान परिषद में साहित्यकला, विज्ञान तथा समाजसेवा इत्यादि के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त व्यक्तियों का मनोनयन करने की परम्परा को ग्रहण किया गया है।

3.अमेरिका के संविधान से मौलिक अधिकार, न्यायिक पुनरावलोकन, संविधान की सर्वोच्चता, स्वतन्त्रता, न्यायपालिका, संघवाद, राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की प्रक्रिया इत्यादि गुण को

ग्रहण किया गया है। राष्ट्रपति में संघ की कार्यपालिका तथा संघ के रक्षा बलो का सर्वोच्च समादेश निहित करना और उपराष्ट्रपति को राज्य सभा का पदेन सभापति बनाने के उपबन्ध अमेरिकी संविधान पर आधारित थे।

4.आस्ट्रेलिया के संविधान से प्रस्तावना की भाषा, समवर्ती सूची का प्रावधान, केन्द्र और राज्य के मध्य सम्बन्ध तथा शक्तियों के विभाजन को ग्रहण किया गया था।

5.कनाडा के संविधान से संघीय शासन व्यवस्था के गुण को ग्रहण किया गया तथा संघ शब्द के स्थान पर यूनियन शब्द का प्रयोग किया गया है।

6.रूसी संविधान से नागरिको के मूल कर्तव्यों को ग्रहण किया है।

7.जर्मनी के संविधान से आपातकाल के दौरान राष्ट्रपति के मौलिक अधिकार सम्बन्धित शक्तियों को ग्रहण किया गया है।

8.जापान के संविधान से विधि द्वारा राष्ट्रपति क्रियाविधि सिद्धान्तों का प्रावधान जिसके आधार पर भारतीय सर्वोच्च न्यायालय कार्य करता है।

9.दक्षिण अफ्रीका के संविधान से संविधान संशोधन की प्रक्रिया की विधि को ग्रहण किया गया था। संविधान के अन्य स्त्रोत के अन्तर्गत संसद द्वारा पारित कानून, राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश, संसद द्वारा निर्मित कुछ प्रमुख कानून, संविधिया जो संविधान के अभिन्न अंग बन गए है इनमें प्रमुख है भारतीय जन प्रतिनिधि अधिनियम 1950 एवं 1951, राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1950, भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955-56 तथा जनप्रतिनिधि अधिनियम, 1988 इत्यादि। भारत में कुछ परम्पराए भी संविधान के विकास में संयोगी रही है। जैसे - संविधान के अनुसार कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित है परन्तु परम्परा यह है कि यह मंत्रिमण्डल के परामर्श से ही कार्य करता है। इस परम्परा को 42 वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा संविधान का अंग बना दिया गया कि राष्ट्रपति को मंत्रीमण्डल की सलाह मानना बाध्यकारी है। दूसरा राष्ट्रपति लोकसभा को भंग कर सकता है किन्तु ऐसा वह प्रधानमंत्री की सलाह से ही करेगा, तीसरा राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है। संविधान लागू होने से अब तक भारत में संविधान में 100 से अधिक संशोधन हो चुके है भारत में संविधान का एक प्रमुख स्त्रोत वे न्यायिक निर्णय है जो सर्वोच्च न्यायालय में समय-समय पर दिए है। भारतीय संविधान के विभिन्न स्त्रोत है तथा इसे संसार के अनेक देशों के संविधान से ग्रहण किया गया है लेकिन भारतीय संविधान को पूर्णरूपेण अन्य संविधानों की नकल भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि हमारा संविधान दूसरे देशों के संविधान का अन्धानुकरण नहीं है किन्तु उनकी अच्छी बातों को ग्रहण करके उन्हें भारतीय परिस्थितियों के अनूकूल ढ़ाला गया है।

अभ्यास प्रश्नः-

1.भारतीय संविधान के देशी अथवा भारतीय स्रोतों के बारें में बताइए?

2.भारतीय संविधान में 1935 के भारत शासन काल अधिनियम का कितना प्रभाव पड़ा। इसकी व्याख्या करें।

3.भारतीय संविधान के विदेशी स्रोतों के बारें में विवेचना कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः-

1.भारतीय संविधान में संविधान संशोधन की प्रक्रिया किस देश से ली गयी है?
(अ) जापान (ब) जर्मनी (स) ब्रिटेन (द) दक्षिण अफ्रीका
2.संविधान के अनुच्छेद 21 में लिखित कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया किस देश के संवैधानिक प्रावधान के समान है
(अ) अमेरिका (ब) चीन (स) ब्रिटेन (द) जर्मनी
3.भारतीय संविधान का सबसे बड़ा स्रोत माना गया है?
(अ) ब्रिटिश संविधान (ब) अमेरिकी संविधान (स) नेहरू रिर्पोट (द) 1935 का भारत शासन अधिनियम
4.राष्ट्रपति पर महाभियोग की प्रक्रिया भारतीय संविधान में ग्रहण की गयी है-
(अ) आस्ट्रेलियाई संविधान से (ब) अमेरिकी संविधान से
(स) कनाडा के संविधान से (द) ब्रिटेन के संविधान से
5. भारतीय संविधान में वर्णित मूल कर्तव्यों को किस देश के संविधान से लिया गया है?
(अ) जापान (ब) चीन (स) ऑस्ट्रेलिया (द) रूस
6. भारतीय संविधान में न्यायिक पुनरावलोकन किस देश के संविधान से लिया गया है?
(अ) ब्रिटेन (ब) कनाड़ा (स) अमेरिका (द) जर्मनी

2.5 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारतीय संविधान निर्माण में किस प्रकार को अपनाया गया है | साथ ही हमें यह भी जानने को मिला कि किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण में किन देशो से भारतीय संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण पक्षों को अपने संविधान में शामिल किया है |

2.6 शब्दावली

धारा- किसी दस्तावेज का खास हिस्सा, अनुच्छेद

संविधान- देश का सर्वोच्च कानून

संविधान संशोधन- देश के सर्वोच्च विधायी संस्था द्वारा उस देश के संविधान मे किये जाने वाला बदलाव

संविधान सभा-जन प्रतिनिधियों की वह सभा जो संविधान लिखने का काम करती है।

प्रारूप- किसी कानूनी दस्तावेज का प्रारंभिक रूप

वयस्क मताधिकार- 18 वर्ष के अधिक उम्र के व्यक्ति द्वारा मत के प्रयोग का अधिकार(भारत के सन्दर्भ में)

न्यायिक निर्वचन-न्यायपालिका द्वारा समय-समय पर कानून की व्याख्या

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.3.3 प्रश्न संख्या 01 (स), 02 (ब), 03 (ब ,04 (स) ,05 - (स) ,

2.4.2 प्रश्न संख्या 01 (द), 02 (अ), 03 (द), 04 (ब), 05 (द), 06 - (स)

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.काश्यप सुभाष, हमारा संविधान, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट,

2.बसु, डी0डी0, भारत का संविधान-एक परिचय, नागपुर, वाधवा

3. Kagzi, M.C. Jain- ***The Constitutional of India Vol I &2*** New Delhi, India Law House, 2001.

4. Keith, Arthur Berriedale- ***A Constitutional History of India 1600-1935,*** London, Methuan & Co.Ltd, 1937

5. Austin, Granville – ***Working a Democratic Constitution: The Indian Experience,*** Delhi Oxford University Press 1999.

6. Sharma, Brij Kishore – ***Introduction to the Constitution of India*** New Delhi, Prentice – Hall of India, 2005.

7. Pandey J.N. – ***Constitutional Law of India,*** Allahabad, Central Law Agency, 2003.

8. Pylee, M.V. ***Constitutional Amendments in India,*** Delhi, Universal Law, 2003.

9. Jois, Justice M.Rama – ***Legal and Constitutional History of India,*** Delhi, Universal Law Publishing Co. 2005.

10. Kautilya – ***The Constitutional History of India 2002,*** Bombay: C Jammadas & Co. Educational and Law Publishers.

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ सामग्री

1.काश्यप, सुभाष, हमारी संसद, नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2011

2.भारत 2012, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,

3.राजनीति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली - वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार।

4.चन्द्र बिपिन - भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

5. Agrawal, R.N. ***National Movement and Constitutional Development of India*** – Nineth (Revised) Edn. New Delhi Metropolitan book Co. (Pvt) Ltd. 1976

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान के निर्माण के इतिहास का वर्णन कीजिए?

2.भारतीय संविधान विभिन्न देशों की संवैधानिक प्रक्रियाओं का मिला-जुला स्वरूप है। इसकी व्याख्या कीजिए।

3.भारतीय संविधान के देशी तथा विदेशी स्रोतों का वर्णन कीजिए।

इकाई 3 : भारतीय संविधान का स्वरुप

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संविधान की प्रस्तावना
3.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
    3.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान
    3.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान
    3.4.3 सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य
    3.4.4 पंथ निरपेक्ष
    3.4.5 समाजवादी राज्य -
    3.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय
    3.4.7 संसदीय शासन प्रणाली
    3.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन
3.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
3.6 लोक कल्याणकारी राज्य
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में हमने भारतीय संविधान के निमार्ण में विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते है कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेगें कि

1. भारतीय संविधान इतना विस्तृत होने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे |
2. भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे
3. भारतीय संविधान में संघात्मक लक्षणों का प्रावधान किये गये जाने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे
4. आप जान सकेगें कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

3.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियॉ भिन्न-भिन्न होती है इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संज्ञात्मक शासन को अपनाया गया है। यहॉ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दु:खद अनुभव को झेल चुका था।

यहॉ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

> " हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को ,
> सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
> विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,
> प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा
> उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता
> सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढाने के लिए

दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

यहॉ हय स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगें-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वंय जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वंय भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन् वह सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।

4.गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।

5.न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वंय को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।

6.एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। परवें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

3.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताए निम्नलिखित हैं -

3.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग .....। '

3.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियॉ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है। जो निम्नलिखित है:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं हैं (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आग्क्तभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये है।

स. नागरिकों मूल अधिकारो का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा

आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धो का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

3.4.3 सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य

जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके है कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और वाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

3.4.4 पंथ निरपेक्ष

भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यति इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है। सभी धर्मो के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

3.4.5 समाजवादी राज्य -

मूल संविधान में इस शब्द का प्राव धान नहीं किया था इसका प्रावधान 42 वे संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है |इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।-

3.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते है। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात न्यूनतम राज्य।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनो के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।

3. भारतीय संविधान मे कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट रकते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते है, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमे लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

3.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन् का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया हैं।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनो में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ मे) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते है।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

3.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहॉं के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान

2. केन्द(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)

3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रुप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहॉं यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यापि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट

विषय हो अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की। जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाए, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते है।

3.5 विभिन्न स्त्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियॉ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरुप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्त्रोत निम्नलिखित है, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्त्रोत	विषय
1.भारतीय शासन अधिनियम १९३५	तीनों सूचियॉ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियॉ
2 .ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
3. अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
4.आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल

5.कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन का केंद्र के पास होना अवशिष्ट शक्तियों ,
6.आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
7.दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
8.पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

3.6 लोक कल्याणकारी राज्य -

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रुप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रुप से भाग 4 के नीति निदेशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1.भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/

2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद । सत्य असत्य/

3.लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके । सत्यअसत्य/

4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है । सत्यअसत्य/

5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है । सत्यअसत्य/

3.7 सारांश

इकाई 4 के अध्ययन के के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान का स्वरूप क्या है | जिसमें जिसमे विविध पक्षों को जानने के साथ ही यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए | जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र –राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ –साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग ,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग ,राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ | इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्कताओं के अनुरूप पाए | जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है |इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई |

3.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मो के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2.आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई 4 संघवाद

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भारतीय संघवाद की विशेषताएं

4.4 भारतीय संविधान में "संघ" शब्द को समझना

4.5 संघात्मक शासन प्रणाली की अर्थ और परिभाषा

4.6 संघात्मक शासन की विशेषता

4.7 संघात्मक शासन के गुण-दोष

4.8 संघ के लिए अपेक्षित शर्तें

4.9 सारांश

4.10 शब्दावली

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.13 सहायक उपयोगी सामग्री

4.14 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना:

संघवाद एक गतिशील अवधारणा है जो राष्ट्रों और राज्यों के निर्माण के इर्द-गिर्द घूमती है। यह मुख्य रूप से संगठित राजनीतिक सहयोग और सामूहिक सह-अस्तित्व के विचार के इर्द-गिर्द घूमता है। सरल शब्दों में, संघवाद 'स्व-शासन प्लस साझा शासन' नामक ढांचे के भीतर सामंजस्यपूर्ण सहवास के लिए एक परिष्कृत खाका की रूपरेखा तैयार करता है, जो डैनियल एलाजार द्वारा व्यक्त की गई अवधारणा है। यह व्यवस्था अनिवार्य रूप से इस तरह से एक साथ रहने पर जोर देती है जो स्वशासन और साझा निर्णय लेने के तत्वों को जोड़ती है।

संघवाद की एक मौलिक विशेषता, जैसा कि रशीदुद्दीन खान द्वारा वर्णित है, राजनीतिक इकाई की एक साथ एकता और इसकी सामाजिक संरचना की विविधता है। संक्षेप में, संघवाद समाज में निहित विविधता को अपनाते हुए व्यापक राजनीतिक संरचना की एकता को संतुलित करने का प्रयास करता है।

संघवाद राज्य और उसके नागरिकों के बीच संबंधों के लिए दिशानिर्देश स्थापित करके राष्ट्रों के निर्माण के लिए एक ढांचे के रूप में भी कार्य करता है। इसका उद्देश्य एक राज्य-समाज गतिशीलता स्थापित करना है जो विशिष्ट सामाजिक समूहों को संवैधानिक रूप से संरक्षित राजनीतिक और संस्थागत स्थानों की सीमा के भीतर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखने की अनुमति देता है। संघीय संविधान की एक केंद्रीय विशेषता समाज के विभिन्न वर्गों, विशेषकर अल्पसंख्यक समूहों के सांस्कृतिक अधिकारों की स्वीकृति और सुरक्षा है।

जबकि संघवाद बहुसंस्कृतिवाद के सिद्धांत के साथ समानताएं साझा करता है, यह संरचनात्मक रूप से विविधताओं को शामिल करने और सामाजिक और राजनीतिक सहयोग को बढ़ावा देने पर अपने विशिष्ट ध्यान के कारण अलग खड़ा है। यह 'साझा नियम' को सुविधाजनक बनाने के लिए डिज़ाइन किए गए तंत्रों की एक श्रृंखला के माध्यम से इसे प्राप्त करता है - यह शब्द निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में विभिन्न पहचान समूहों की संयुक्त भागीदारी को दर्शाता है।

राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया का मार्गदर्शन करने वाले एक सिद्धांत के रूप में संघवाद में तीन मूलभूत तत्व शामिल हैं। ये घटक एक प्रभावी शासन संरचना स्थापित करने में महत्वपूर्ण हैं जो सरकार और समाज के विभिन्न स्तरों के बीच सहकारी और संतुलित बातचीत को बढ़ावा देती है:

1. **प्रादेशिक गठन और स्थानीय प्रशासन:** पहली आधारशिला में राज्यों का निर्माण और संघीय-स्थानीय प्रशासनिक ढांचे की स्थापना शामिल है जो नागरिकों और सरकार के बीच सीधे जुड़ाव की सुविधा प्रदान करती है। इसमें एक वृहद-स्तरीय प्रयास, जिसमें अलग-अलग राज्यों का गठन शामिल है, और एक सूक्ष्म-स्तरीय प्रयास, जो स्थानीय स्व-शासन

के लिए तंत्र स्थापित करने पर केंद्रित है, दोनों शामिल हैं। राज्यों का गठन अक्सर इस बात पर आधारित होता है कि लोग, संस्कृति और भूगोल समय के साथ कैसे परस्पर क्रिया करते हैं, जिसका लक्ष्य आंतरिक सामंजस्य और कार्यात्मक व्यवहार्यता के बीच संतुलन हासिल करना है। इसके अतिरिक्त, इसमें स्थानीय जातीय समुदायों की विशिष्ट सांस्कृतिक और प्रशासनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए क्षेत्रीय या जिला परिषदों की स्थापना शामिल हो सकती है।

2. **शक्तियों का विकेंद्रीकृत वितरण:** दूसरा महत्वपूर्ण पहलू विकेंद्रीकृत तरीके से संघीय शक्तियों के वितरण से संबंधित है। इस वितरण का उद्देश्य प्रत्येक इकाई के लिए स्वायत्तता और क्षमता की एक डिग्री सुनिश्चित करते हुए, घटक इकाइयों के बीच शक्तियों और जिम्मेदारियों को आवंटित करना है। प्रत्येक इकाई के पास उसके निर्दिष्ट प्रभाव क्षेत्र के भीतर पर्याप्त विधायी अधिकार, कार्यकारी क्षमता और वित्तीय संसाधन होने चाहिए। शक्तियों का यह विकेंद्रीकरण व्यक्तिगत इकाइयों को केंद्रीय सत्ता के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए रखते हुए अपनी जिम्मेदारियों को कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए सशक्त बनाने के लिए आवश्यक है।
3. **साझा नियम का संस्थागतकरण:** तीसरा महत्वपूर्ण घटक उन संस्थानों के निर्माण पर केंद्रित है जो 'साझा नियम' की अवधारणा को मूर्त रूप देते हैं। इन संस्थानों को सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच सहयोग और सहयोग की सुविधा के लिए डिज़ाइन किया गया है। साझा शासन के लिए तंत्र स्थापित करके, संघवाद का लक्ष्य स्थानीय सीमाओं से परे मुद्दों को सामूहिक रूप से संबोधित करने के लिए विविध पहचान और दृष्टिकोण को एक साथ लाना है। यह घटक एक राष्ट्र के भीतर एकता और विविधता को संतुलित करने पर संघवाद के जोर का सार दर्शाता है।

4.2 उद्देश्य

1. संघवाद के अर्थ और परिभाषा को समझ पायेंगें।

2. भारतीय संघवाद की विशेषताओं को समझ पायेंगें।

3. भारतीय संविधान में 'संघ' शब्द के महत्व को समझ पायेंगें।

4.3 भारतीय संघवाद की विशेषताएँ

एकात्मक राज्य में सहायक संघीय सिद्धांतों के साथ भारतीय संघवाद को केवल "अर्ध-संघीय" के रूप में वर्णित करना, इसके सार को व्यापक रूप से समझने में विफल रहता है। इस तरह का चरित्र-चित्रण भारतीय संघवाद के व्यापक परिप्रेक्ष्य, इसके ऐतिहासिक विकास, वृद्धि और विकास को

नजरअंदाज करता है। यह सच है कि भारतीय संघवाद विशिष्ट परिस्थितियों में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है, लेकिन यह अकेला इसे पूरी तरह से अर्ध-संघीय के रूप में परिभाषित नहीं करता है। बल्कि, भारतीय संघवाद को एक गतिशील अवधारणा के रूप में सबसे अच्छी तरह समझा जाता है जो केंद्रीय प्राधिकरण और राज्य स्वायत्तता के बीच संतुलन को दर्शाता है।

अपने निर्दिष्ट डोमेन के भीतर, राज्यों और केंद्र सरकार दोनों के पास कुछ हद तक संप्रभुता होती है। यह परिप्रेक्ष्य बी.आर. के विचारों से मेल खाता है। अम्बेडकर, भारतीय संविधान के एक प्रमुख वास्तुकार थे। संविधान सभा की बहस के दौरान अम्बेडकर की चर्चाएँ बहुमूल्य अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, अगस्त 1949 में आपातकालीन प्रावधानों पर विचार-विमर्श के दौरान, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारतीय संविधान, केंद्र को प्रांतीय निर्णयों को खत्म करने की कुछ शक्तियों की अनुमति देता है, लेकिन स्वाभाविक रूप से संघीय बना रहता है।

अम्बेडकर का दृष्टिकोण उस मूलभूत सिद्धांत पर प्रकाश डालता है कि भारतीय संघवाद राज्यों को संविधान द्वारा उनके लिए आरक्षित क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में संप्रभुता प्रदान करता है। इसका मतलब यह है कि प्रांतों (राज्यों) के पास अपने विशिष्ट डोमेन के भीतर उतना ही संप्रभु अधिकार है जितना केंद्र सरकार के पास अपने निर्दिष्ट क्षेत्रों में है। संविधान कुछ प्रावधान प्रदान करता है जो केंद्र को प्रांतीय कानून को खत्म करने की अनुमति देता है, लेकिन इन उदाहरणों के अलावा, प्रांतों के पास अपने क्षेत्रों के कल्याण, व्यवस्था और शासन के लिए कानून बनाने का व्यापक अधिकार है।

अम्बेडकर का तर्क इस मौलिक अवधारणा को रेखांकित करता है कि एक बार जब संविधान प्रांतों को संप्रभुता और पूर्ण शक्तियाँ प्रदान करता है, तो केंद्र सरकार या किसी बाहरी प्राधिकरण के किसी भी हस्तक्षेप को प्रांत की संप्रभुता पर अतिक्रमण माना जाना चाहिए। यह दावा मौलिक रूप से संघवाद के केंद्रीय आधार को स्वीकार करता है - प्राधिकरण के अलग-अलग केंद्रों का सह-अस्तित्व।

भारतीय संविधान में केंद्रीयवाद की धारणा को संबोधित करते हुए: अम्बेडकर की अंतर्दृष्टि

इन आरोपों के जवाब में कि भारतीय संविधान सत्ता को अत्यधिक केंद्रीकृत करता है, बी.आर. 25 नवंबर, 1949 को विधानसभा के एक सत्र में अंबेडकर ने इस धारणा का खंडन करने के लिए एक सम्मोहक तर्क पेश किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारतीय संविधान का संघवाद का मूल सिद्धांत इसकी एकमात्र परिभाषित विशेषता के रूप में केंद्रीयवाद के आरोप का खंडन करता है।

अम्बेडकर ने संघवाद की आधारशिला पर प्रकाश डाला: केंद्र सरकार और राज्यों के बीच विधायी और कार्यकारी प्राधिकरण का स्पष्ट विभाजन। यह विभाजन केंद्र सरकार द्वारा अधिनियमित किसी

भी बाद के कानून द्वारा निर्धारित नहीं है, बल्कि संविधान में ही अंतर्निहित है। यह अंतर राज्यों की विधायी और कार्यकारी शक्तियों की स्वायत्त प्रकृति को रेखांकित करता है, जो केंद्रीय प्राधिकरण पर किसी भी निर्भरता से स्वतंत्र है। वास्तव में, अम्बेडकर ने इस बात पर जोर दिया कि राज्यों का अधिकार उनके संबंधित डोमेन के भीतर केंद्र के बराबर है। केंद्र और राज्यों के बीच शक्ति की यह सह-समान प्रकृति मौलिक रूप से केंद्रीयवाद के विचार का खंडन करती है। उन्होंने बताया कि ऐसे संविधान का वर्णन करना केंद्रीयवाद गलत होगा जहां राज्यों की संप्रभुता को संवैधानिक रूप से बरकरार रखा गया है।

अम्बेडकर ने स्वीकार किया कि भारतीय संविधान केंद्र के विधायी और कार्यकारी प्राधिकरण के लिए पर्याप्त परिचालन स्थान आवंटित करता है, जो अन्य संघीय संविधानों की तुलना में अधिक व्यापक दिखाई दे सकता है। उन्होंने आगे कहा कि केंद्र अवशिष्ट शक्तियों को बरकरार रखता है, जो कुछ संघीय व्यवस्थाओं से अलग है जहां ये शक्तियां राज्यों में निहित हैं। हालाँकि, ये विशिष्ट विशेषताएं संघवाद के मूल सार को परिभाषित नहीं करती हैं। जैसा कि अंबेडकर ने जोर दिया था, संघवाद का सार केंद्र सरकार और घटक इकाइयों (राज्यों) के बीच विधायी और कार्यकारी शक्ति के संवैधानिक वितरण में निहित है। संविधान में निहित यह वितरण, भारत के संवैधानिक ढांचे में सन्निहित संघवाद का आधार सिद्धांत है। इसलिए, अम्बेडकर ने इस दावे का दृढ़ता से खंडन किया कि भारतीय संघीय ढांचे में राज्य केंद्र के अधीन हैं। उन्होंने जोर देकर कहा कि केंद्र सरकार इस संवैधानिक व्यवस्था की सीमाओं को एकतरफा नहीं बदल सकती है, और यहां तक कि न्यायपालिका भी इस सुस्थापित सिद्धांत से बंधी है।

4.4 भारतीय संविधान में 'संघ' शब्द के महत्व को समझना

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 1 भारत को "राज्यों के संघ" के रूप में निर्दिष्ट करता है, एक ऐसा वाक्यांश जिसका गहरा अर्थ और निहितार्थ है। यह घोषणा एक इकाई के रूप में भारत की एकता और अविभाज्यता को रेखांकित करती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी घटक इकाई को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं है। यह भारतीय संघ की स्थायी और अटूट प्रकृति की पुष्टि करता है।

इसके अलावा, राज्यों को बनाने और बदलने का अधिकार विशेष रूप से संघ के पास है। केंद्र सरकार विभाजन, विलय या आंतरिक सीमाओं में परिवर्तन के माध्यम से राज्यों की स्थापना करने का विशेषाधिकार रखती है। इसमें नए क्षेत्रों को संघ में शामिल करने की शक्ति शामिल है। वर्तमान में, भारत में 28 राज्य और सात केंद्र शासित प्रदेश शामिल हैं।

राज्य पुनर्गठन की प्रक्रिया 1955 में राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा उल्लिखित सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होती है। इन सिद्धांतों में राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा, भाषाई और सांस्कृतिक एकरूपता, वित्तीय और प्रशासनिक विचार और राष्ट्रीय योजना का सफल कार्यान्वयन शामिल है। नए राज्यों का निर्माण करते समय, संघ भाषा, संस्कृति और पारिस्थितिकी जैसे कारकों को ध्यान में रखते हुए पहचान और प्रशासनिक सीमाओं को सरेखित करने का प्रयास करता है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जबकि संघ राज्य गठन पर प्राथमिक अधिकार रखता है, ऐसी कोई भी कार्रवाई प्रभावित राज्यों की विधान सभाओं द्वारा पारित प्रस्तावों पर आधारित होती है।

'संघ' शब्द का एक और निहितार्थ यह है कि भारत की संघीय संरचना पहले से मौजूद दो संप्रभु संस्थाओं के बीच एक समझौते का परिणाम नहीं है। इसके बजाय, भारतीय संघ भारतीय लोगों की सामूहिक इच्छा के माध्यम से अस्तित्व में आया, जिसे स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान पोषित किया गया था। यह अंतर भारतीय संसद के ऊपरी सदन, राज्य सभा की अनूठी संरचना को स्पष्ट करता है। सममित रूप से प्रतिनिधित्व वाले सदन के विपरीत, राज्यसभा की संरचना राज्यों की जनसंख्या के आकार के आनुपातिक प्रतिनिधित्व पर आधारित है। नतीजतन, बड़ी आबादी वाले उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अधिक सीटें हैं, जबकि मणिपुर और गोवा जैसे छोटे राज्यों में कम सीटें हैं।

4.5 संघात्मक शासन प्रणाली अर्थ एवं परिभाषा

संघात्मक शासन प्रणाली में संविधान के द्वारा केन्द्र व उसकी इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है। इस शासन में संघीय (केन्द्रीय) सरकार और राज्य सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर शासन कार्य करती हैं। दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र होकर कार्य करती हैं। 'संघ' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के फोएड्स शब्द से हुई हैं, जिसका अर्थ है, 'समझौता' या 'संधि'। इस अर्थ के आधार पर समझौता या सन्धि द्वारा निर्मित राज्य को 'संघ' कहा जाता है। वर्तमान विश्व में संघीय राज्यों की संख्या दो दर्जन से ज्यादा नहीं है किन्तु ये राज्य-विश्व के बहुत बड़े हिस्से पर फैले हैं। विश्व के 06 बड़े राज्यों में 05 संघीय राज्य हैं, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका ,कनाडा, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, रूस। भारत, जर्मनी, दक्षिण अफ्रीका, व स्विट्जरलैण्ड आदि अन्य प्रमुख देश हैं। ज्ञातव्य है कि संघीय व्यवस्था ऐसा बना बनाया ढॉचा नहीं है जिसे भिन्न-भिन्न देशों में ज्यों का त्यों लागू किया जा सके। भिन्न-भिन्न देशों में अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार संघीय व्यवस्था अपने-अपने ढंग से विकसित हुई है।

परिभाषाएँ

फाइनर के अनुसार ''संघात्मक राज्य वह है, जिसमें सत्ता शक्ति का एक भाग इकाइयों में निहित रहता है, दूसरा भाग केन्द्र में, जो क्षेत्रीय इकाइयों के लोगों द्वारा जान-बूझकर संगठित की जाती है।''

गार्नर के अनुसार, ''संघ एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारें एक ही प्रभुत्व शक्ति (संविधान) के अधीन होती हैं तथा ये सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर ही कार्य करती हैं।''

स्ट्रांग के शब्दों में, ''एक संघात्मक राज्य कई राज्यों के मेल से बना एक प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य है जिसकी अपनी सत्ता ,मेल करने वाले राज्यों से प्राप्त होती है और जिसमें वे राज्य इस प्रकार बँधे होते हैं कि एक राजनीतिक इकाई का निर्माण होता है।''

4.6 संघात्मक शासन की विशेषताएँ

संघात्मक शासन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. लिखित एवं कठोर संविधान- संघीय शासन का संविधान लिखित एवं कठोर होता है,ऐसा इसलिए कि इकाइयों के अहित में संविधान में कोई संशोधन न हो सके।

2. संविधान की सर्वोच्चता- संघात्मक शासन में संविधान सर्वोच्च होता है। केन्द्र एवं राज्य सरकारें संविधान द्वारा प्राप्त शक्तियों के आधार पर ही कार्य करती हैं, वे संविधान के प्रतिकूल कोई कार्य नहीं कर सकती हैं।

3. सम्प्रभु शक्ति का दोहरा प्रयोग- संघीय शासन में सम्प्रभुता अविभाजित होती है किन्तु एक संघीय राज्य में सम्प्रभुता की अभिव्यक्ति केन्द्र सरकार व राज्य सरकार को प्राप्त शक्तियों के आधार पर होती है तथा दोनों ही अपनी शक्तियॉं संविधान से प्राप्त करती हैं।

4. कार्यों एवं शक्ति का विभाजन- संघीय शासन व्यवस्था में शासन की शक्तियों का विभाजन संविधान द्वारा केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच किया जाता है। शक्तियों के वितरण के साथ ही दोनों सरकारें अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने को भी स्वतंत्र होती हैं।

5. स्वतंत्र एवं सर्वोच्च न्यायपालिका- संघीय शासन में सर्वोच्च न्यायालय स्वतंत्र होता है। उस पर सरकार के किसी भी अंग (व्यवस्थापिका व कार्यपालिका) का न तो कोई प्रभाव होता है न ही कोई दबाव। संविधान के संरक्षक के रूप में होने के कारण यह सर्वोच्च होता है।

6. दोहरी नागरिकता- संघीय शासन-व्यवस्था में नागरिकों को दोहरी नागरिकता प्राप्त होती है, एक तो केन्द्र की व दूसरी राज्यों (इकाइयों) की किन्तु भारतीय संघ इसका एक अपवाद है। यहॉं नागरिकों को संघ की ही नागरिकता प्राप्त हैं।

7. संबंध विच्छेद की स्वीकृति नहीं- संघीय शासन व्यवस्था में संघ एक स्थाई राज्य होता है। इसलिए किसी भी संघात्मक राज्यों में इकाइयों केा केन्द्र से अलग होने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है।

8. द्विसदनीय विधानमण्डल- संघीय शासन में द्विसदनीय विधानमण्डल (संसद) की व्यवस्था होती है। एक सदन-जिसमें राष्ट्र का प्रतिनिधित्व होता है और दूसरा सदन-जिसमें संघ की इकाइयों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। अमरीकी 'प्रतिनिधि सभा' व भारत की 'लोकसभा' समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती हैं, जबकि 'सीनेट' व 'राज्य सभा' इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

4.7 संघात्मक शासन के गुण-दोष

वर्तमान में शासन व्यवस्था का सर्वाधिक प्रचलित रूप संघात्मक शासन है। इसीलिए 'सिजविक' का कथन है कि ''जब हम शासन व्यवस्था के स्वरूप के संबंध में भूत से भविष्य की ओर नजर दौड़ाते हैं तो हमें संघात्मक शासन-व्यवस्था के विकास की सबसे अधिक सम्भावना प्रतीत होती है। लास्की भी इसके समर्थन में कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व समाज संधात्मक शासन-व्यवस्था की ओर बढ़ रहा है।

4.7.1 संघात्मक शासन के गुण

1. विविधता वाले राष्ट्रों के लिए उपयोगी- संघात्मक शासन व्यवस्था विविधता वाले राष्ट्रों के लिए उपयोगी है। जिस राष्ट्र में धर्म, जाति, वर्ग व भाषा के आधार पर विविधता पायी जाती है, उस राष्ट्र में यह शासन व्यवस्था इन विविधताओं की रक्षा करते हुए उपयोगी सिद्ध होती है। इस शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता एवं स्थानीय शासन दोनों के ही हित सम्भव है। भारत जैसे देश में जहॉ इतनी विविधता पायी जाती है संघीय शासन पद्धति श्रेष्ठता के साथ कार्य कर रही हैं।

2. छोटे व कमजोर राज्यों के लिए उपयुक्त- संघीय शासन व्यवस्था में छोटे व कमजोर राज्य संगठित होकर शक्तिशाली राज्य बन सकते हैं क्योंकि संघीय शासन व्यवस्था में छोटे व कमजोर राज्यों की स्वतंत्रता और उनका पृथक अस्तित्व बना रहता है और उन्हें आर्थिक विकास व सुरक्षा के पूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं।

3. सार्वजनिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण- संघीय शासन व्यवस्था सार्वजनिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। इस व्यवस्था में नागरिकों को राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में विकास के पूर्ण अवसर प्राप्त होते हैं तथा संघ व राज्य इकाइयों को सार्वजनिक जीवन को उपयोगी बनाने हेतु सभी तरह के प्रयोग करने की स्वतंत्रता होती है।

4. बड़े राष्ट्रों के लिए उपयोगी- संघीय शासन प्रशासनिक क्षमता की दृष्टि से बड़े राष्ट्रों के लिए उपयोगी है। संघीय शासन में केन्द्र व राज्य इकाइयों के बीच शासन कार्यो की शक्तियों का बंटवारा होने के कारण यह शासन विशाल राज्यों के लिए उपयुक्त है।

5. नागरिक अधिकारों की सुरक्षा- संघीय शासन में नागरिक अधिकारों की सुरक्षा बनी रहती है क्योंकि इस शासन व्यवस्था में शासन की निरंकुशता पर नियंत्रण लगाये जाते हैं, जिससे नागरिक अधिकार सुरक्षित रहते हैं।

6. आर्थिक रूप से लाभकारी- संघात्मक शासन आर्थिक रूप से लाभकारी है। इस शासन व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्य इकाइयों को अपने-अपने आर्थिक संसाधनों को विकसित करने का अवसर मिलता है। संघात्मक शासन मितव्ययी भी है। सेना, रेल, डाक एवं तार तथा अन्य व्यवस्थाओं के एक हो जाने से व्यय में बहुत कमी आ जाती है।

7. सार्वजनिक कार्यों के प्रति उत्साह- संघात्मक शासन में नागरिकों की राजनीतिक चेतना के कारण सार्वजनिक कार्यों के प्रति उनमें उत्साह रहता है। संघात्मक शासन में नागरिकों को शासन-कार्यों में भागीदारी प्राप्त होती है, जिस कारण नागरिक समस्याओं के समाधान में अधिक रूचि लेते हैं, और उनमें आत्म-सम्मान व अभिरूचि की भावना का विकास होता है।

8. प्रजातंत्र के लिए उपयोगी- संघात्मक शासन-व्यवस्था प्रजातंत्र के लिए उपयोगी है, क्योंकि इसमें सत्ता के विकेन्द्रीकरण के कारण स्थानीय स्वशासन की भावनाओं का विकास होता है, जो प्रजातंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है। स्थानीय स्वशासन के विकास के कारण नागरिकों को राजनीतिक ज्ञान मिलता है, उनमें राजनीतिक चेतना का विकास होता है।

9. निरंकुशता की सम्भावना नहीं- संघात्मक शासन व्यवस्था में सरकार के निरंकुश होने की सम्भावना नहीं रहती। इस शासन व्यवस्था में केन्द्र व राज्य इकाइयों के बीच शासन-सत्ता का स्पष्ट विभाजन रहने के कारण केन्द्रीय सरकार निरंकुश और स्वेच्छाचारी नहीं बन सकती है। संविधान तथा न्यायपालिका का उनकी शक्तियों पर नियंत्रण रहता है। केन्द्र तथा स्थानीय सरकारें कोई भी एक-दूसरे के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। स्थानीय स्वशासन के संबंध में राज्य इकाइयों को बहुत स्वतंत्रता रहती है, जिस कारण तानाशाही की सम्भावना नहीं रहती।

4.7.2 संघात्मक शासन के दोष

उपरोक्त गुणों के बावजूद संघात्मक शासन में अनेक दोष पाए जाते हैं-

1. संगठन व कार्य-पद्धति में भिन्नता- संघीय शासन प्रणाली में प्रशासनिक संगठन व कार्य-पद्धति में भिन्नता पाई जाती है क्योंकि केन्द्र एवं राज्यों को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने के लिए स्वतंत्रता

और शक्तियॉं प्राप्त होती हैं। कई बार ऐसे विषय होते हैं जो सामान्य महत्व के होते है लेकिन राज्यों को शक्ति प्राप्त होने के कारण अलग-अलग राज्यों द्वारा उस विषय पर अलग-अलग नियम बनाए जाते हैं, जो कठिनाई पैदा करते हैं।

2. जटिल और खर्चीली शासन प्रणाली- संघीय शासन व्यवस्था में संविधान कठोर होने के कारण इसमें आसानी से संशोधन नहीं किया जा सकता, जिस कारण कई बार शासन कार्यो में परेशानी आ जाती है और शासन कार्य जटिल हो जाता है। केन्द्र व राज्यों में दोहरी शासन प्रणाली होने के कारण यह व्यवस्था बहुत ही खर्चीली हो जाती है।

3. केन्द्र व राज्य सरकारों में विवाद- इस शासन व्यवस्था में कई बार संघ व राज्य सरकारों में शासन कार्यो के विषय में विवाद उत्पन्न हो जाता है। कुछ विषय ऐसे होते है जिन पर कानून बनाने व कार्य करने की शक्ति दोनों सरकारों को प्राप्त होती है। ऐसे विषयों पर केन्द्र व राज्य सरकारों में विवाद उत्पन्न हो जाता है।

4. संकट-काल में अनुपयुक्त- संघीय शासन प्रणाली में संविधान संशोधन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल होती है जिस कारण यह शासन-प्रणाली संकटकाल के लिए उपयोगी नहीं होती।

5. प्रशासन कार्यों में एकरूपता का अभाव- संघीय शासन में केन्द्र व राज्य सरकारों को अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करने के लिए स्वतंत्रता व शक्तियॉं प्राप्त होती हैं और वे अपने-अपने राजनीतिक हितों और सुविधाओं के अनुसार कार्य करती हैं, कभी-कभी एक राज्य की नीति दूसरे राज्य पर गलत प्रभाव डालती है। अतः प्रशासनिक कार्यो के संबंध में इनमें (केन्द्र व राज्यों में) एकरूपता नहीं पायी जाती है।

6. विद्रोह की सम्भावना- संघात्मक शासन में यह आशंका बनी रहती है कि इकाई राज्यों की सरकारें विद्रोह कर सकती हैं और विरोधी हितों की रक्षा के लिए राज्य इकाइयों में फूट और कलह हो सकता है। गृह-युद्ध की स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है।

4.8 संघ के लिए अपेक्षित शर्ते

संघ निर्माण के लिए कुछ अपेक्षित शर्तों या तत्वों का होना आवश्यक है। इन शर्तों की पूर्ति होने पर ही संघ का निर्माण सम्भव है। संघ की सफलता या असफलता इन शर्तों पर ही निर्भर करती है। संघ निर्माण के लिए केन्द्र तथा इकाइयों के बीच शासन-शक्तियों का स्पष्ट विभाजन होना चाहिए। साथ ही केन्द्र और इकाइयों की सरकारें एक-दूसरे से स्वतंत्र और एक-दूसरे के समकक्ष होनी चाहिए।

संघ निर्माण तथा उसकी सफलता के लिए निम्नलिखित शर्तें अनिवार्य है

1. भौगोलिक सामीप्य- संघीय राज्य का क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से सम्पर्कयुक्त होना चाहिए, यदि संघीय राज्य के भाग या इकाइयॉं जल अथवा भूमि द्वारा बड़ी दूरी से एक-दूसरे से कटे होंगे, तो संघीय-व्यवस्था को सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकेगा। भौगोलिक दृष्टि से निकटता होने पर राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से राष्ट्रीय प्रगति तेजी से हो सकती है। सैनिक दृष्टि से भी भौगोलिक समीपता का विशेष महत्व है। भारत व अमेरिका के संघीय शासन की सफलता का एक बड़ा कारण यह भी है कि भौगोलिक दृष्टि से इकाइयॉं एक दूसरे के निकट हैं। स्विट्जरलैण्ड व आस्ट्रेलिया के संघों में भी यह गुण मौजूद है।

2. संघ की इकाइयों में समानता- संघीय राज्य के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि संघ की इकाइयों को शक्तियों के स्तर में समानता प्राप्त होनी चाहिए, चाहे उनका प्रादेशिक और जनसंख्या संबंधी आकार कुछ भी हो ।सभी इकाइयों को शक्तियों का वितरण समानता के आधार पर प्राप्त होना चाहिए। शक्तियों के असमान वितरण से इकाइयों में असंतोष पनप सकता है और यह संघ निर्माण के लिए उचित नहीं हो सकता। इस संबंध में मिल का कथन है कि ''संघ का सार यह है कि, कोई एक इकाई राज्य अन्य की अपेक्षा इतना अधिक शक्तिशाली और सम्पन्न न हो कि वह उन्हें दबाए और केन्द्रीय शासन को भी प्रभावित करने का प्रयास करे।

3. राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं में समानता- संघ के निर्माण की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर प्रशासनिक व्यवस्थाओं की शैली समान हो, भारत तथा आस्ट्रेलिया में केन्द्र तथा राज्यों के स्तर पर शासन का संघीय रूप है। यदि सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से संस्थाओं में समानता नहीं होगी तो संघ का संगठित रहना कठिन हो जायेगा।

4. सामाजिक एवं आर्थिक विकास- संघीय शासन व्यवस्था सफलता पूर्वक कार्य करे इसके लिये यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण संघ का आर्थिक एवं सामाजिक विकास हो। यदि संघ का कोई भी क्षेत्र आर्थिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़ा एवं अविकसित होगा तो यह संघीय व्यवस्था के लिए क्षेत्रीय असन्तुलन पैदा कर देगा और यह स्थिति संघ की सफलता के लिए उचित नहीं है।

5. राजनीतिक योग्यता आवश्यक- संघ की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक नेतृत्व कुशल होना चाहिए और जन-जागरूकता होनी चाहिए। असफल नेतृत्व संघीय व्यवस्था को कमजोर कर सकता है।

6. केन्द्र-राज्य समन्वय- संघ निर्माण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्र तथा राज्य इकाइयों के बीच सुखद समन्वय होना चाहिए तथा संघ का चरित्र प्रतियोगी नहीं सहयोगी होना चाहिए ,उसे अपनी नीतियों के प्रति कठोर नहीं नरम होना चाहिए। संघ की क्रिया दमनकारी नहीं बल्कि सहयोग पूर्ण होनी चाहिए।

7. धर्म, संस्कृति, भाषा आदि में समानता- संघ की सफलता में समान संस्कृति, भाषा, धर्म का बड़ा योगदान होता है क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से नजदीक राज्य अपनी संस्कृति, भाषा, धर्म की एकता व सुरक्षा के लिए एकत्र होकर संघ बना लेते हैं और यही एकता व समानता संघ की सफलता है।

8. संसाधनों की उपलब्धता- संघीय व्यवस्था में प्रत्येक इकाई की सरकार को मिलने वाले संसाधन एवं विषय पर्याप्त होने चाहिए। जिन राज्य इकाइयों में इन संसाधनों की कमी होती है उन्हें केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है जिससे संघ की व्यवस्था डगमगा जाती है। अतः संघीय व्यवस्था में संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता होनी चाहिए।

9. राजनीतिक एवं राष्ट्रीय एकता- संघ की सफलता या निर्माण के लिए संघीय राज्य के नागरिकों को राष्ट्रीय रूप में व राजनीतिक दृष्टि से एकताबद्ध होना चाहिए तथा राष्ट्र का राजनीतिक स्वरूप इस तरीके से तैयार होना चाहिए कि पूर्ण राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता और राज्य इकाइयों से संबंधित लोंगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके। अतः जब तक लोगों में अपनी राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यों के प्रति अपनी निष्ठाएँ व वचनबद्धताएँ नहीं होगीं, तब तक कोई राजनीतिक व्यवस्था सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। संघीय राज्य के लिए यह अति आवश्यक है ताकि लोग दोहरे शासनों के प्रति अपनी निष्ठा को कायम रख सकें।

10. राजनीतिक जागृति- संघ के निर्माण एवं सफलता के लिए उसके नागरिकों में सक्षम राजनीतिक चेतना होनी चाहिए। संघ के नागरिकों को, संघ और इकाई राज्यों के प्रति अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान आवश्यक है। संघ की सफलता उसके नागरिकों की राजनीतिक जागृति पर बहुत निर्भर करती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संघात्मक शासन प्रणाली में संविधान के द्वारा केन्द्र व उसकी इकाइयों के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है। सही/गलत

2. 'संघ' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के ''फोएड्स'' शब्द से हुई हैं। सही/गलत

3. संघात्मक शासन प्रणाली की यह परिभाषा किसने दी कि ''संघ एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारें एक ही प्रभुत्व शक्ति (संविधान) के अधीन होती हैं तथा ये सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में संविधान द्वारा दी गई शक्तियों के आधार पर ही कार्य करती हैं।''

क. लास्की ख. फाइनर ग. गार्नर घ. ब्राइस

4. किस शासन प्रणाली में दोहरी नागरिकता पायी जाती है?

क. एकात्मक शासन प्रणाली में ख. संघात्मक शासन प्रणाली में

ग. मिश्रित शासन प्रणाली में घ. इनमें से कोई नहीं

4.9 सारांश

अंत में, प्रस्तुत इकाई संघवाद की अवधारणा का व्यापक परिचय प्रदान करती है, इसके मूल अर्थ और आवश्यक विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। भारतीय संघवाद की मुख्य विशेषताओं पर जोर देकर, इकाई उन सिद्धांतों पर जोर देती है जो इस अद्वितीय शासन ढांचे को परिभाषित करते हैं। संघवाद मूल रूप से सामूहिक शासन के बारे में है, जो राज्यों के रणनीतिक गठन, विकेंद्रीकृत संघीय शक्तियों और साझा निर्णय लेने के लिए संस्थानों की स्थापना के माध्यम से प्राप्त किया जाता है।

भारतीय संघवाद, जिसे अक्सर 'अर्ध-संघीय' के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, विशेष रूप से कुछ परिस्थितियों में, विकेंद्रीकृत शासन और केंद्रीकरण की अंतर्निहित प्रवृत्ति के बीच एक उल्लेखनीय संतुलन प्रदर्शित करता है। यह संतुलन भारतीय संविधान में निहित राज्यों और केंद्र सरकार के बीच आवंटित विभाजित विधायी और कार्यकारी प्राधिकरण द्वारा बरकरार रखा गया है। जबकि भारत राज्यों के संघ के रूप में कार्य करता है, इसकी घटक इकाइयों के बीच अलगाव के अधिकारों की अनुपस्थिति राष्ट्र की एकता और अविभाज्यता को मजबूत करती है। असाधारण परिस्थितियों में, भारतीय संघवाद अस्थायी रूप से एकात्मक प्रणाली जैसी विशेषताओं को अपना सकता है, जो इसकी अनुकूली प्रकृति का उदाहरण है।

केंद्रीकरण के दो अलग-अलग रूप, परिस्थितिजन्य और सहमति, संघीय ढांचे की अखंडता और स्थिरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन दृष्टिकोणों को महासंघ की इकाइयों को बाहरी खतरों से बचाने, संविधान का अनुपालन सुनिश्चित करने और वित्तीय संकटों से निपटने के लिए नियोजित किया जाता है।

राज्यों और संघ के बीच संघीय शक्तियों का वितरण क्षेत्रीयता और विषयों की विशिष्टता द्वारा नियंत्रित होता है। यह आवंटन सुनिश्चित करता है कि सार्वजनिक अव्यवस्था, कृषि, स्वच्छता और कराधान जैसे स्थानीय महत्व के मामले राज्यों के दायरे में आते हैं, जबकि विदेशी मामले, रक्षा और मुद्रा जैसे राष्ट्रीय महत्व के क्षेत्र केंद्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में रहते हैं।

4.10 शब्दावली

केन्द्रीकरण- एक स्थान पर एकत्र होना

अपरिवर्तनशील- जो परिवर्तित (बदल) ना हो सके

प्रभुत्व शक्ति- सर्वोच्च शक्ति, प्रभावी शक्ति

सामीप्य- सुलभता, संगमता

समन्वय- सहयोग, सामंजस्य

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सही 2. सही 3. ग. 4. ख.

4.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. इंटर-गवर्मेन्ट रिलेशन इन इंडिया ए स्टडी ऑफ फैडरलिज्म- अमल राय
2. फैडरल गवर्मेन्ट- के0 सी0 व्हीयर
3. तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी गैना

4.13 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं- सी0बी गैना
2. आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त- डॉ0 पुष्पेश पाण्डे, डॉ विजय पंत एवं घनश्याम जोशी

4.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान में "संघ" शब्द के महत्व की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

2. संघात्मक शासन प्रणाली से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए इसके गुण-दोष बतलाइये।

इकाई-5 : नागरिकता

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 नागरिकता
5.3.1 नागरिकता का अर्थ एवं महत्व
5.3.2 नागरिकता का ऐतिहासिक विकास
5.3.3 नागरिकता के विविध पक्ष
5.3.4 नागरिकता के सिद्धान्त
5.3.5 नागरिकता के सिद्धान्त की समालोचनायें
5.3.6 नागरिकता के संवैधानिक उपबन्ध
5.3.7 नागरिकता अधिनियम 1955
5.3.8 नागरिकता का अर्जन
5.3.9 नागरिकता की समाप्ति
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

एक नागरिक राजनीतिक समुदाय का सहभागी सदस्य होता है | राष्ट्रीय, राज्य या स्थानीय सरकार की कानूनी आवश्यकताओं व औपचारिकता को पूरा करके नागरिकता प्राप्त की जा सकती है | एक राष्ट्र अपने नागरिकों को कुछ अधिकार और विशेषाधिकार देता है | अतएव नागरिक अधिकारों का श्रोत नागरिकता का विचार है परन्तु मानव अधिकारों का विचार नागरिकता की सीमाओं से बधा नहीं है। हो सकता है किसी राज्य में किसी अपराधी का विक्षिप्त व्यक्ति को नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया हो। परन्तु फिर भी उसे उपयुक्त मानव अधिकारों का पात्र माना जायेगा। मानव अधिकार ऐसे अधिकार है जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने चाहिए। बिना मानव अधिकार के हम नागरिकता की संकल्पना को सार्थक नहीं बना सकते। जब प्रत्येक देश में नागरिकों को उनके अधिकार मानव होने के नाते मिल जायेगे तथा वह व्यक्ति देश की शासन व्यवस्था में भाग लेगा तभी सही अर्थ में वह उस राज्य का पूर्ण नागरिक कहलायेगा। आज के युग में नागरिकता की पहचान अधिकारों से की जाती है।

प्राचीन काल एवं मध्यकाल में नागरिकों में बड़ी ही असमानता थी। उनको स्वतंत्रता, समानता, विभिन्न प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक, अर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। दास, श्रमिक, स्त्री आदि को नागरिक नहीं माना जाता था। मध्यकाल में राजा के पास सारे अधिकार केन्द्रित थे राजा ही कानून बनाता था। वही कानूनो का क्रियान्वयन करता था एवं वही न्यायिक कार्य भी करता था। अर्थात विधायिका कार्यपालिका एवं न्यायपालिका एक जगह केन्द्रित थी। इसलिए नागरिकों को सही न्याय नहीं मिल पाता था। वर्तमान समय में विश्व के अधिकतर देशों में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली अपनायी गयी है। जहां पर नागरिकों को अधिक से अधिक अधिकार एवं स्वतंत्रताएं मिली हुई है।

प्रत्येक राज्य में दो तरह के लोग होते है। नागरिक एवं विदेशी। नागरिक राज्य के पूर्ण सदस्य होते है और उनकी अपने राज्य पर पूर्ण निष्ठा होती है। इन्हें सभी सिविल और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते है। दूसरी ओर विदेशी किसी अन्य राज्य के नागरिक होते है इसलिए उन्हें सभी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होते है। नागरिकता का वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि विभिन्न देशों में अलग-अलग नागरिकता प्राप्त करने के तरीके है किसी देश में एकल नागरिकता मिली हुई है तो किसी देश में दोहरी नागरिकता। एक केन्द्र सरकार तथा दूसरी राज्य सरकार द्वारा। जैसे- भारत में एकल नागरिकता है तो अमेरिका में दोहरी नागरिकता।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत नागरिकता से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का विस्तार पूर्वक विवेचन किया जायेगा। वर्तमान समय मेंदुनियाँ के विभिन्न देशों में सरकार का स्वरूप एवं उनकी अपनी कार्यप्रणाली है। उस सन्दर्भ में नागरिकों के अधिकारों एवं कर्तव्य की गहरी समझ आवश्यक हो जाती है। अतः इस इकाई के सम्यक एवं गहन अध्ययन के पश्चात आपः-

1.नागरिकता के अर्थ एवं महत्व को समझ सकेंगे।

2.नागरिक के अधिकार एवं कर्तव्य से अवगत हो सकेंगे।

3.नागरिकता के ऐतिहासिक विकास को क्रमबद्ध रूप से समझ सकेंगे।

4.नागरिकता के विविध पक्षः नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार से अवगत हो सकेंगे।

5.भारतीय सन्दर्भ में नागरिकता से सम्बन्धित उपबन्धों को समझ कर अपने अधिकारों के लिए कानूनी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.वर्तमान समय में नागरिकों के कानूनी अधिकार एवं उसकी व्यवहारिकता पर अपने विचार रख सकेंगे।

5.3 नागरिकता

इस नागरिकता के अन्तर्गत हम नागरिकता के अर्थ, महत्व, परिभाषा तथा उसके संवैधानिक उपबंध पर चर्चा करेगे। नागरिकता का विकास कैसे हुआ विभिन्न समय में नागरिकता की क्या स्थिति थी। इसका ऐतिहासिक अवलोकन विस्तार पूर्वक करते हुए यह जानेंगे कि इसकी वर्तमान वैश्विक स्थिति क्या है तथा विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में कैसी नागरिकता लोगों को मिली हुई है। इस प्रकार हम नागरिकताके विभिन्न पक्ष का अवलोकन करते हुए भारत के सन्दर्भ में नागरिकता की कानूनी स्थिति का अध्ययन करेगे तथा इसके साथ-साथ यह भी जानेंगे कि भारत में किस प्रकार से नागरिकता का अर्जन किया जा सकता है तथा उसकी समाप्ति के क्या कारण हो सकते हैं।

5.3.1 नागरिकता का अर्थ एवं महत्व

नागरिकता का अर्थ है वह स्थित जिसमें व्यक्ति किसी राजनीतिक समुदाय का पूर्ण और उत्तरदायी सदस्य होता है और सार्वजनिक जीवन में भाग लेता है। नागरिक ऐसा व्यक्ति है जो राज्य के प्रति निष्ठा रखता है और उसे राज्य का संरक्षण प्राप्त होता है। नागरिकता का विचार बहुत पुराना है परन्तु

आधुनिक युग में यह राष्ट्र राज्य के अन्तर्गत व्यक्ति को हैसियत का संकेत देता है। इस संदर्भ में औपचारिक नागरिकता और तात्विक नागरिकता में अन्तर करना उपयुक्त होगा। औपचारिक नागरिकता के लिए राष्ट्र राज्य की सदस्यता पर्याप्त मानी जाती है। दूसरी ओर किसी राष्ट्र राज्य के अन्तर्गत अपनेपूर्व सदस्यों को जो नागरिक राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त होते है वे तात्विक नागरिकता की परिभाषा में आते हैं। किसी राज्य में व्यक्ति को नागरिकता किन किन शर्तों पर प्राप्त होगी यह उस राज्य के संविधान और कानून पर निर्भर है।

देखा जाय तो नागरिकता की मूल संकल्पना कर्तव्य भावना के साथ जुड़ी थी और उसमें अधिकारों का विचार गौण था। परन्तु आज के युग में नागरिकता की पहचान अधिकारों से की जाती है और व्यक्ति के कर्तव्य वही तक स्वीकार किये जाते है जहां तक वे इन अधिकारों को कायम रखने के लिए जरूरी हो, अगर व्यापक रूप से देखा जाय तो नागरिकता राज्य एवं व्यक्ति के बीच कानूनी सम्बन्ध का प्रतीक है। नागरिकता कुछ अधिकार, दायित्व एवं कर्तव्य प्रदान करती है। किसी आधुनिक राज्य के निवासियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। नागरिक और विदेशी।

5.3.2 नागरिकता का ऐतिहासिक विकास

नागरिकता का विचार अपने आरम्भिक रूप में प्रचीन यूनानी और रोमन राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत देखने को मिलता है। यह बात याद रखने की है कि प्राचीन यूनानी राजनीतिक समुदाय का स्वरूप आज के लोकतांत्रिक राष्ट्र राज्य के राजनीतिक समुदाय के सर्वथा भिन्न था। आज के लोकतांत्रीय राज्य के सभी स्थायी सदस्य वहां के नागरिक माने जाते हैं परन्तु प्रचीन यूनानी नगर राज्य के निवासियों में बहुत थोड़े लोग स्वतंत्र जन होते थे। जो पूर्ण नागरिक माने जाते थे। इन नागरिकों के अधिकार अवश्य समान थे इनमें धनवान और निर्धन में कोई भेदभाव नहीं बरता जाता था। शेष समुदाय में दास स्त्रियों और अन्य देशी आते थे जिन्हें कोई नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। अतः अरस्तू ने नागरिकता को शासन वर्ग का विशेषाधिकार माना है यह शक्ति के प्रयोग में प्रभावशाली सहभागिता का संकेत देती थी। अरस्तू कहता है, नागरिक वही है, जो न्याय व्यवस्था एवं व्यवस्थापिका के एक सदस्य के रूप में भाग लेता है। दोनों में या एक में क्योंकि ये दोनों ही प्रभुसत्ता के मुख्य कार्य है। अरस्तू के अनुसार राज्य मे निवास करने से सभी लोगों को नागरिकता नहीं मिल जाती वह श्रमिक एवं दासों को नागरिकता की परिधि से बाहर रखता है। उसने किसी मनुष्य के राज्य में निवास करते हुए भी नागरिक न होने की निम्नलिखित चार दशाएं बतलाई है-

1.राज्य के किसी स्थान-विशेष में निवास करने मात्र से नागरिकता नहीं मिल सकती।

2.किसी पर अभियोग चलाने का अधिकार रखने वाले व्यक्ति को भी नागरिक नहीं माना जा सकता, क्योंकि सन्धि द्वारा यह अधिकार विदेशियों को भी दिया जा सकता है।

3.उन व्यक्तियों को नागरिक नहीं माना जा सकता, जिनके माता पिता किसी दूसरे राज्य के नागरिक है क्योंकि ऐसा करने से हम नागरिकता निर्धारण के किसी सिद्धान्त का निर्माण नहीं करते।

4.निष्कासित तथा मताधिकार से वंचित व्यक्ति भी राज्य के नागरिक नहीं हो सकते।

यूनान के किसी भी राज्य में विदेशियों, दासों, स्त्रियों तथा बच्चों को नागरिकता के अधिकार प्रदान नहीं किये गये थे। यूनानी नागरिकता आधुनिक नागरिकता की अपेक्षा बहुत अधिक संकुचित थी। इसी दृष्टि से अरस्तू ने भी स्वाभाविक रूप से राज्य के सभी निवासियों को नागरिक स्वीकार नहीं किया। उसने यह तर्क दिया कि नागरिकता एक विशेष गुण है जिसके लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता होती है। यह गुण प्रत्येक निवासी में नहीं पाया जाता।

कुछ भी हो प्राचीन यूनानी चिंतन में शासक वर्ग के इस विशेषाधिकार को कर्तव्य का रूप देकर इसके पालन पर बल दिया गया है ताकि राजनीति समुदाय के सब लोगों को अर्थात नागरिकों और गैर नागरिकों दोनों तरह के लोगों को उत्तम जीवन प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो। यूनानी नगर राज्यों के पतन के बाद रोमन साम्राज्य के युग में नागरिकता की नई परिभाषा विकसित की गई। शुरू-शुरू में वहां नागरिकता सत्ताधारियों का विशेषाधिकार थी परन्तु बाद में सामान्य जनों और युद्ध में पराजित लोगों को भी नागरिकों का दर्जा दे दिया गया इससे तरह तरह के लोग नागरिकों की श्रेणी में आ गये केवल निम्नतम श्रेणी के लोगों और स्त्रियों को नागरिकता के दायरे से बाहर रखा गया। मध्ययुगीन यूरोप में जब राजनीतिक सत्ता पर धार्मिक सत्ता का वर्चस्व स्थापित हो गया तब सांस्कृतिक नागरिकता का विचार विशेष चर्चा का विषय नहीं रहा। 15वीं-16वीं शताब्दी में जब पुर्नजागरण आलोक में आधुनिक चिंतन का उदय हुआ तब इतालवी गण राज्यों में नागरिकता का विचार फिर से आकर्षण का केन्द्र बना। विख्यात इतालवी विचार निकोलो मैक्यिावली (1469 से 1527) ने इस विचार को नया जीवन प्रदान किया। सत्रहवीं शताब्दी में जेम्स हरिंग्टन (1611-1677) और मिल्टन (1608-1674) ने इसका पुनर्निरूपण किया हैरिंग्टन ने भविष्य के लिए ऐसी आदर्श व्यवस्था का चित्र खींचा जो कानूनों का सम्राज्य होगा मनुष्यों का नहीं। इग्लैण्ड की गौरवमय क्रांति (1688) के समर्थकों ने नागरिकता के विचार को विशेष रूप से लोकप्रिय बनाया। 18वीं शताब्दी में अमरीकी क्रांति (1776) के दिनों में यह विचार अमरीका में बहुत लोकप्रिय रहा।

नागरिकता का विश्वजनीन आदर्श फ्रांसीसी क्रांति (1789) तथा मानव एवं नागरिक के अधिकारों की घोषणा के साथ पूरे उत्कर्ष पर पहुंचा। इस घोषणा के अन्तर्गत जे॰जे॰ रूसो के विचारों की प्रतिध्वनि सुनाई देती थी। रूसों ने अपनी कृति सामाजिक अनुबंध (1762) के अन्तर्गत लिखा था कि नागरिक एक स्वतंत्र और स्वायत्त व्यक्ति है। वह उन सब निर्णयों में भाग लेने का हकदार है जो सब नागरिकों के लिए वाध्यकर होते हैं। यूरोप में वाणिज्य समाज के उदय को देखकर रूसों ने यह

स्पष्ट अनुभव किया था कि इस समाज में समान्य हित और निजी हितों में तनाव पैदा होना स्वाभाविक है और यह तनाव समाज की एकता को छिन्न भिन्न कर देगा। रूसो ने सोच समझकर सामन्य हित के विचार को निजी हितों की मांग से ऊपर रखा।

उन्नीसवीं शताब्दी मे उदारवाद के उत्कर्ष के साथ बाजार संबंधों का विकास हुआ जिसने नागरिकता की नई धारणा को बढ़ावा दिया। अब प्राकृतिक अधिकारों के विचार को नागरिकता का आधार माने जाने लगा। प्राकृतिक अधिकारों का विचार मूलतः सत्रहवी शताब्दी के इंग्लैण्ड में जांन लांक (1632-1704) ने प्रस्तुत किया था। लांक ने तर्क दिया कि जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों का मुख्य आधार है। इन्ही अधिकारों की रक्षा के लिए नागरिक अपने राज्य का निर्माण करते हैं। यदि राज्य इन अधिकारों की रक्षा नहीं कर पाता तो व्यक्ति को राज्य के विरोध का अधिकार मिल जाता है। इन विचारों की प्रेरणा से उन्नीसवी शताब्दी में नागरिकता को केवल कानूनी हैसियत का सूचक माने जाने लगा और व्यक्ति के अधिकारों की परिभाषा, 'राज्य के विरूद्ध अधिकारों' के रूप में दी जाने लगी। कुछ भी हो नकारात्मक अधिकारों की इस धारणा ने उदार लोकतंत्रीय समाजों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया और आगे चलकर इसी समाज में सकारात्मक अधिकारों की धारणा विकसित हुई जिसने नागरिकता के विचार को अपने तर्क संगत परिणाम तक पहुंचाया।

5.3.3 नागरिकता के विविध पक्षः नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकार

आज के युग में तात्विक नागरिकता के तीन महत्वपूर्ण पक्ष स्वीकार किए जाते है। इन्हें क्रमशः नागरिक, राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों की कोटि में रखा जाता है। टी॰एच॰ मार्शल ने अपनी प्रसिद्ध कृति नागरिकता और सामाजिक वर्ग (1950) के अंतर्गत यह दिखाया है कि ब्रिटेन में किस तरह धीरे-धीरे इन अधिकरों का विकास हुआ है जिससे नागरिकता की संकल्पना अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंची है। यह बात याद रखने की है कि वहां सत्रहवी शताब्दी के अंत में गौरवमय क्रांति (1988) के साथ नागरिकता की संकल्पना की शुरूआत हुई। मार्शल ने यह दिखाया है कि अठारहवां शताब्दी के ब्रिटेन में नागरिक अधिकारों से जुड़ी नागरिकता या नागरिक नागरिकता का विकास हुआ। उन्नसवी शताब्दी में वहां राजनीतिक अधिकारों से जुड़ी नागरिकता या राजनीतिक नागरिकता स्थापित हुई। अंततः बीसवीं शताब्दी में वहां राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग के परिणामस्वरूप सामाजिक अधिकारों से जुड़ी नागरिकता या सामाजिक नागरिकता का विकास हुआ। मार्शल ने लिखा है कि वहां के न्यायालय नागरिकों के नागरिक अधिकारों की रक्षा करते है। प्रतिनिधि राजनीतिक संस्थाएं उनके राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करती है और सामाजिक सेवाएं तथा स्कूल उन्हें समुचित सामाजिक अधिकार प्रदान करते हैं।

मार्शल के अनुसार नागरिक अधिकारों में कानून के समक्ष समानता दैहिक स्वतंत्रता, भाषण या वाणी, विचार और आस्था की स्वतंत्रता, संपति रखने और अनुबंध करने के अधिकारों का विशेष स्थान है। नागरिक अधिकारों की सार्थकता के लिए यह जरूरी है कि ये अधिकार अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक वर्गों को समानता या बराबरी के आधार पर प्राप्त होने चाहिए। दूसरे शब्दों में इन अधिकारों की व्यवस्था करते समय राज्य के नृजातीय प्रजातीय धार्मिक और भाषाई समूहों में से किसी के साथ किसी तरह का भेदभाव नहीं बरता जाना चाहिए। यदि किन्हीं समूहों के साथ विशेषतः अल्पसंसख्यक वर्गों के साथ इस मामले में भेदभाव बरता जाता है तो ये समूह इस भेदभाव के विरूद्ध नागरिक अधिकार आंदोलन चला सकते है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमरीका में नागरिक अधिकार आंदोलन उन अधिकारों को लागू करने के लए चलाए गए जो कानून में तो निहित थे परंतु व्यवहार के स्तर पर अश्वेत लोगों को ये अधिकार प्राप्त नहीं थे। उन्हें विशेष रूप से सार्वजनिक संपत्ति और सार्वजनिक स्थानों के मुक्त प्रयोग तथा रोजगार के समान अवसरों से वंचित रखा गया था। उनके लगातार संघर्ष और लंबे आंदोलन का परिणाम नागरिक के अधिनियम के रूप में सामने आया।

मार्शल के अनुसार सामाजिक अधिकारों से तात्पर्य है- निश्चित स्तर की आर्थिक और सामाजिक खुशहाली का अधिकार तथा सभ्यता और संस्कृति की धरोहर को दूसरों के साथ मिल जुलकर प्रयोग करने का अधिकार। लोकतंत्रीय प्रणालियों के अंतर्गत नागरिकों को सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्रायः कल्याणकारी राज्य की छत्रछाया में प्रदान किए जाते है। यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के राज्य को प्रहरी राज्य की संज्ञा दी जाती थी क्योंकि उसका उद्देश्य नागरिकों की संपत्ति की रखवली करना था। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में 'शक्तिमूलक' राज्य अस्तित्व में आया जिसका मुख्य लक्ष्य दूसरे विश्व युद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त करना था। इस शताब्दी के उत्तरार्ध से कुछ पहले ब्रिटेन में कल्याणकारी राज्य का उदय हुआ जो धीरे धीरे अन्य लोकतंत्रीय देशों में भी लोकप्रिय हो गयां इसका उद्देश्य सरकारी तंत्र को उन नीतियों के निर्माण एवं कार्यान्यन में लगाना और उनके लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था करना था जो नागरिकों क सामूहिक सामाजिक हितों को बढ़ावा देती हों। बेवरिज रिपोर्ट (1942) के अनुसार इस राज्य का ध्येय पांच महा बुराइयां को अंत करना था। अभाव, अज्ञान, दरिद्रता, रोग और बेकारी। अब यह माना जाने लगा कि भविष्य में जब खुले बाजार की अर्थ व्यवस्था के दुष्परिणाम लोगों के बस के बाहर हो जायेंगे-विशेषतः जब लोग बेरोजगारी बीमारी और बुढ़ापे की वजह से लाचार हो जाएंगे तब राज्य अर्थ व्यवथा में हस्तक्षेप करके प्रभावित लोगों के लिए आवश्यक सहायता का प्रबंध करेगा। यह बात महत्वपूर्ण है कि ब्रिटेन में नागरिकता के विविध पक्षों का विकास तर्कसंगत क्रम से हुआ और इस क्रम में वह अपने उत्कर्ष तक पहुंची। वहां नागरिक अधिकारों ने लोकतंत्र के पनपने के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया जिससे राजनीतिक अधिकारों की स्थापना हुई। राजनीतिक अधिकारों ने जनसाधारण का सार्वजनिक जीवन में भाग लेने

और सार्वजनिक निर्णयों को प्रभावित करने का अवसर दिया। इससे सामाजिक अधिकारों का विकास हुआ और कल्याणकारी राज्य की स्थापना हुई। दूसरी और संयुक्त राज्य अमरीका में नागरिकता की संकल्पना नागरिक अधिकारों के आगे नहीं बढ़ पाई अतः वहां स्त्रियों और अश्वेतों ने नागरिक अधिकारों की प्रप्ति के लिए संघर्ष चलाया और इसमें सफलता प्राप्त की।

5.3.4 नागरिकता के सिद्धान्त

समकालीन राजनीतिक चर्चा के अंतर्गत नागरिकता के उपयुक्त आधार और विचारक्षेत्र के बारे में अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किए गये हैं। इनमें पांच सिद्धांत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उदारवादी सिद्धान्त, स्वेच्छातंत्रवादी सिद्धांत, समुदायवादी सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धान्त और बहुलवादी सिद्धांत।

इस सिद्धांत के अनुसार नागरिकता की बुनियाद नागरिक अधिकार है ये अधिकार समाज में समानता और सामाजिक न्याय स्थापित करके अपने तर्कसंगत परिणाम तक पहुंचते है। चूंकि यह सिद्धांत अधिकारों के विकास में विश्वास करता है इसीलिए इसे नागरिकता का विकासात्मक सिद्धांत भी कहा जाताहै। इस सिद्धांत का मुख्य प्रवक्ता टी॰एच॰ मार्शल है। मार्शल ने अपनी महत्वपूर्ण कृति नागरिकता और सामाजिक वर्ग (1950) के अंतर्गत लिखा है कि नागरिकता विभिन्न व्यक्तियों के लिए समान अधिकार और कर्तव्य, स्वतंत्रताएं और प्रतिबंध, शक्तियां और उत्तरदायित्व निर्धारित करती है। इसके अंतर्गत ये व्यक्ति मिल जुलकर अपने साहचर्य की शर्तें तय करते है। नागरिकता का विचार समाज के वर्ग विभेद की विपरीत दिशा में कार्य करता है। सामाजिक वर्ग तो संपति के स्वामित्व, शिक्षा के स्तर और अर्थव्यवस्था के ढांचे के आधार पर विभिन्न व्यक्तियों में विषमता को बढ़ावा देता है परंतु नागरिकता उन्हें समान हैसियत प्रदान करने को तत्पर होती है।

इस सिद्धांत के आलोचक यह तर्क देते है कि यह जरूरत से ज्यादा आशावादी है। जब सामाजिक अधिकारों की व्यवस्था के लिए सामाजिक संसाधनों का पुनर्वितरण किया जाता है तब समाज में कुछ लोगों पर कर लगाकर दूसरों को लाभ पहुंचाया जाताहै। समाज में सद्भावना और सुदृढ़ता कायम रखने के लिए यह जरूरी है कि कर देने वालों पर अनुचित बोझ न पड़े।

नागरिकता का स्वेच्छातंत्रवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार नागरिकता की स्थिति व्यक्तियों के स्वतंत्र चयन और अनुबंध का परिणाम है। यह बाजार सामाज के प्रतिरूप को नागरिक जीवन का उपयुक्त आधार मानता है। इस सिद्धांत का मुख्य प्रवक्ता रावर्ट नांजिक हैं। नॉजिक ने अपनी चर्चित कृति अराजकता राज्य और कल्पनालोक (1974) के अंतर्गत यह संकेत किया है कि लोग अपने मूल्यों मान्यताओ और अधिमान्यताओं की

सिद्धि के लिए निजी गतिविधि बाजार विनिमय और स्वैच्छिक साहचर्य का सहारा लेते है। नागरिकता की जरूरता इसलिए पैदा होती है क्योंकि कुछ आवश्यक वस्तुए और सेवाएं इन तरीको से उपलब्ध नहीं हो पाती। अतः उनके लिए सार्वजनिक व्यवस्था जरूरी हो जाती है। इस दृष्टि से नागरिक का अर्थ है सार्वजनिक वस्तुओं का विवेकशील उपभोक्ता । नॉजिक के अनुसार राज्य को एक विशाल उद्यम मानना चाहिए नागरिक उसके ग्राहक या सेवार्थी है।। मनुष्य अपनी संपति के अधिकार की रक्षा के लिए संरक्षक संस्थाओं की सेवाएं प्राप्त करते हैं। राज्य ऐसी संरक्षक संस्था है जो मुक्त प्रतियोगिता में सबसे आगे रहती है। अतः उसे निर्दिष्ट भू-भाग में बल प्रयोग का एकाधिकार प्राप्त हो जाता है।

इस सिद्धांत के आलोचक यह तर्क देते है कि मुक्त बाजार पर आधारित व्यक्तिवाद सामाजिक सुदृढ़ता के लिए पर्याप्त नहीं है। नागरिकता का यह प्रतिरूप समाज के भीतर स्वार्थों की भीषण लड़ाई और तीव्र वाद विवाद को बढ़ावा देगा। उदाहरण के लिए नागरिकता की यह संकल्पना लागू कर देने पर ऐसे प्रश्न उठ खड़े होंगे जो लोग सरकारी अस्पताल से इलाज नहीं कराते या अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में नहीं भेजते वे इन अस्पतालों और स्कूलों का खर्च उठाने के लिए कर क्यों दें जिनके पास विशाल संपत्ति नहीं है वे इतने बड़े पुलिस बल के रख-रखाव का खर्च उठाने में सहयोग क्यो दें या फिर जिन्हें अपने देश से कोई लगाव नहीं है अर्थात जो लोग अपनी प्रतिभा और परिश्रम के बल पर कहीं भी जाकर ऊंची आय अर्जित कर सकते हैं वे अपने देश की विशाल सेनाओं के रख रखाव के खर्च में अपना हिस्सा क्यों दें।

इस तर्क को आगे बढ़ाते हुए यह भी कहा जाएगा कि लोगो को अपनी आकस्मिक जरूरतों जैसे कि अग्नि कांड, बीमारी, दुर्घटना, चोरी, डकैती इत्यादि के समय सहायता के लिए निजी बीमा कंपनियों की सेवाएं प्राप्त करनी चाहिए। इस तरह धीरे-धीरे सरकार की जरूरत ही खत्म हो जाती है और नागरिकता का विचार निरर्थक हो जाएगा।

नागरिकता का समुदायवादी सिद्धांत

समुदायवादी सिद्धांत के विपरीत नागरिकता का समुदायवादी या गणतंत्रवादी सिद्धांत व्यक्ति और समुदाय के सुदृढ़ बंधन पर बल देता है। इसके अनुसार नागरिक ऐसा व्यक्ति है जो राजनीतिक वाद विवाद और निर्णय प्रक्रिया में भाग लेकर अपने समाज का भावी रूप निर्धारित करने में सक्रिय भूमिका निभाता है। दूसरे शब्दों में नागरिकता का मुख्य लक्षण नागरिक सहभागिता है। इस सिद्धांत के प्रवर्तकों में हन्ना आरेंट, बेंजामिन बार्बर और माइकेल वाल्जर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस सिद्धांत की मुख्य मान्यता यह है कि नागरिक जिस समुदाय का सदस्य है उसके साथ वह अपना तादात्म्य स्थापित करें और उसके राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग ले तभी वह सामान्य हित

की सिद्धि में योग दे सकता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति अपने आपकों समुदाय की संस्कृति परंपराओ मान्यताओं और भावनाओं के साथ एकाकार करके ही सच्चे अर्थों में उसका नागरिक बनता है।

इस सिद्धांत के आलाचक यह तर्क देते है कि नागरिकता का यह प्रतिरूप केवल ऐसे छोटे आकार के एकसार समुदाय के लिए उपयुक्त है जैसा चौथी शताब्दी ई०पू० एथेंस या पंद्रहवी शताब्दी के फ्लोरेंस में प्रचलित था। रूसों ने अपनी विख्यात कृति सामाजिक अनुबंध के अंतर्गत ऐसे समुदाय को लक्ष्य करके ही सामान्य इच्छा के आविर्भाव की कल्पना की थी।

नागरिकता का मार्क्सवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार नागरिकता से जुड़े हुए अधिकार वर्ग संघर्ष की देन है अर्थात वर्ग संघर्ष में कोई वर्ग अपने विरोधी वर्ग का दमन करके जो अधिकार प्राप्त करता है, वही नागरिकता की बुनियाद है। इस सिद्धांत का प्रमुख व्याख्याकार एंथनी गिडेंस है। गिडेंस ने अपनी दो प्रमुख कृतियां ऐतिहासिक भौतिकवाद की समकालीन मीमांसा और सामाजिक सिद्धांत रूपरेखा और मीमांसा के अंतर्गत अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए मार्शल के विचारों का खंडन किया है।

गिडंेस के विचार से नागरिकता और आधुनिक लोकतंत्र का विकास सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से शुरू हुआ जब राज्य की प्रभुसत्ता और प्रशासनिक ढांचे का विस्तार हो गया। इस तरह राज्य अपने नागरिकों के बारे में सूचना एकत्र करने उनकी गतिविधियों का हिसाब रखने और उनपर निगरानी रखने में समर्थ हो गया। परंतु वह केवल बल प्रयोग के सहारे उन पर नियंत्रण रखने में समर्थ नहीं रहा, ऐसी हालत में शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए शासन और शासित एक दूसरे पर आश्रित हो गए और ऐसे अवसर पैदा हो गए कि शासित स्वयं शासकों पर अपना प्रभाव डाल सकें।

नागरिकता का बहुलवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार नागरिकता का विकास एक जटिल और बहु आयामी प्रक्रिया है। इसे किसी एक कारण के साथ नहीं जोड़ा जा सकता बल्कि इसकी उपयुक्त व्याख्या के लिए इसके भिन्न-भिन्न कारणों की भूमिका पर ध्यान देना चाहिए।

डेविड हैल्ड ने राजनीति-सिद्धान्त और आधुनिक राज्य के अंतर्गत लिखा है कि प्राचीन काल से आज तक नागरिकता का यह अर्थ लगाया गया है कि नागरिक को अपने समुदाय के विरुद्ध कुछ अधिकार प्राप्त होंगे और समुदाय के प्रति उसके कुछ कर्तव्य होंगे। ये अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे पर आश्रित हैं। दूसरे शब्दों में वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक व्यक्ति के अधिकार दूसरों के कर्तव्य बन जाते है। उसके कर्तव्य दूसरों के अधिकार बन जाते हैं नागरिकता का सार तत्व समुदाय

के जीवन में व्यक्ति की सहभागिता है। इसे केवल वर्ग संघर्ष की देन मानना भ्रांमक होगा। इतिहास के पन्ने पलट कर देखें तो बहुत सारे लोगों को लिंग, धर्म, संपत्ति, शिक्षा, व्यवसाय, आयु इत्यादि के आधार पर नागरिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। आज के युग में ऐसे भेदभाव के विरूद्ध अनेक आंदोलन चलाए गए है।

संक्षेप में नागरिकता का बहुलवादी सिद्धांत उन सब प्रवृत्तियों और आंदोलनों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। जो समाज के वंचित वर्गों को मुख्य धारा में सम्मिलित करने की मांग उठाते है। चूंकि सामाजिक चेतना के विकास के साथ-साथ ये आंदोलन निरंतर नई-नई दिशाओं में फैल रहे है, इसलिए नागरिकता का विश्लेषण निरंतर अनुसंधान का विषय है उसे किसी एक बने बनाए ढांचे में ढालकर नहीं देखा जा सकता।

5.3.5 नागरिकता के सिद्धांत की समालोचनाएं

समकालीन विश्व में कई ओर से यह आवाज उठाई जा रही है कि नागरिकता का प्रचलित सिद्धांत समाज के सब हिस्सों को उपयुक्त अधिकार प्रदान नहीं करता। इस दृष्टि से नारीवाद समालोचना और उपाश्रितवर्गीय समालोचना, दो तरह की समालोचनाएं विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

नारीवादी समालोचना

नागरिकता के नारीवादी समालोचक यह तर्क देते हैं कि समाज में स्त्रियां को प्रकट रूप से पूर्ण नागरिकता प्राप्त हो जाने पर भी नागरिक जीवन में वे पराधीन बनी रहती है। 1970 के दशक के समाज और राजनीति में स्त्रियों की स्थिति विशेष चर्चा का विषय बन गई है। इससे पहले प्रायः यह माना जाता था कि कानून की दृष्टि से स्त्री पुरुष की समानता स्थापित हो जाने के बाद स्त्रियों के लिए शिकायत का कोई मुद्दा नहीं रह गया है। स्त्रियों को मताधिकार मिल जाने के बाद मतदान व्यवहार के जो अध्ययन प्रस्तुत किए गए उनसे यह निष्कर्ष निकाला गया कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियां मतदान मं कम हिस्सा लेती है। इसकी यह व्याख्या दी गई कि स्त्रियों को निजी और घरेलू मामलों में ज्यादा दिलचस्पी होती है उन्हें राजनीति और सार्वजनिक मामलों में बहुत कम दिलचस्पी रहती है और उसके लिए उन्हें पर्याप्त समय भी नहीं मिलता।

कुछ दशक पहले जब परिवार छोटे होने लगे और ज्यादा से ज्यादा स्त्रियां घर से बाहर के काम करने लगी तब इस व्याख्या पर लोगों को उतना विश्वास नहीं रहा। फिर यह भी देखा गया कि मतदान में हिस्सा लेने वाली स्त्रियों का अनुपात लगातार बढ़ रहा है परंतु राजनीतिक सत्ता के स्तरों पर उनका हिस्सा बहुत मामूली है। विश्वभर के निर्वाचक मंडलों में स्त्रियों की संख्या पचास प्रतिशत से कम तो नहीं है परंतु राजनीतिक प्रतिनिधित्व के स्तर पर उनका अनुपात बहुत कम है।

अतः नारीवादी यह मांग करते हैं कि जब तक सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों की समान सहभागिता की शर्त पूरी नहीं की जाती तब तक नागरिकता की संकल्पना को अपने तर्कसंगत परिणाम तक नहीं पहुंचाया जा सकता। यह बात ध्यान देने की है कि भारत में पचायतों के स्तर पर स्त्रियों के लिए एक तिहाई स्थान सुरक्षित रखकर इस दिशा में पहल की गई है। इससे स्त्रियों को आधार स्तर पर राजनीति में आने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। धीरे-धीरे इस स्तर पर उनके प्रतिनिधित्व को बढ़ावा जा सकता है और विधान सभाओं तथा संसद में भी उनके पर्याप्त प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जा सकती है।

उपाश्रितवर्गीय समालोचना

नागरिकता के सिद्धान्त को उपाश्रितवर्गीय समालोचना का तात्पर्य यह है कि केवल कानूनी या औपचारिक स्तर पर सब नागरिकों के समान अधिकारो की व्यवस्था कर देने से समाज के उपाश्रित वर्गों के स्थिति को सुधारने में कोई सहायता नहीं मिलती। उपाश्रितवर्ग का मुख्य लक्षण सामाजिक पराधीनता है। नागरिकता की उपाश्रितवर्गीय समालोचना के संदर्भ में उपाश्रितवर्ग की परिभाषा को और श्री विस्तृत करना जरूरी है। संक्षेप में समाज के जो भी समूह या वर्ग घोर दरिद्रता और तरह-तरह की विवशता के कारण अमानवीय जीवन जी रहे है जिनके जीवन में आशा की कोई किरण नहीं रह गई है और जिनके उद्धार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है उन सबको उपाश्रितवर्ग की श्रेणी में रखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में ये समाज उपेक्षित वर्ग है। कानूनी तौर पर भारत में बंधुआ मजदूरी समाप्त हो चुकी है। परंतु कहीं कहीं अब भी यह प्रथा चल रही है। बाल मजदूरी भी कानूनी तौर पर बंद हो चुकी है। परंतु यह समाज में दिखाई देती है। गांवों में बहुत छोटे किसान और खेतिहर मजदूर दो जून रोटी के लिए तरसते हैं कलकता के कूड़ा मजदूर जिनमें बच्चों की संख्या बहुतायत है-कूड़े मे से कबाड़ी का समान चुन चुनकर रोटी की जुगाड़ करते है। दिहाड़ी मजदूर, बेबस, लाचार, बीमार लोग कानून की दृष्टि से इस देश के माननीय नागरिक है। परंतु यथार्थ जीवन में ये मनुष्य भी नहीं है। जब तक नागरिकता की चादर से ये धब्बे नहीं मिटाए जाते अर्थात जब तक देश के बेबस और लाचार लोगों को इंसानों की तरह जीने के लिए आवश्यक परिस्थितियां प्रदान नहीं की जाती तब तक देश में पूर्ण नागरिकता के विकास पर गर्व करना व्यर्थ ही नहीं भ्रामक भी होगा।

5.3.6 भारत में नागरिकता के संवैधानिक उपबंध

भारत का संविधान परिसंघात्मक व्यवस्था केंद्र और राज्य के मध्य करती है किन्तु एकल नागरिक व्यवस्था है |राज्यों की कोई अलग नागरिकता की व्यवस्था नहीं है | भारतीय संविधान के भाग 2 में अनुच्छेद 5 से 11 तक में नागरिकता के बारे में चर्चा की गई है। इस संबंध में इसमें स्थायी और विस्तृत उपबंध नहीं है। यह सिर्फ उन लोगो की पहचान करता है। जो संविधान होने के समय अर्थात 26 जनवरी 1950 भारत के नागरिक बनें। इसमें न तो इनके अधिग्रहण एवं न ही नागरिकता की हानि

की चर्चा की गई है। यह संसद को इस बात का अधिकार देता है कि वह नागरिकता से संबंधित मामलों की व्यवस्था करने के लिए कानून बनाए। इसी प्रकार संसद ने नागरिकता अधिनियम 1955 को लागू किया गया। जिसका 1986,1992 2003 और 2005 में संशोधित किया गया।

संविधान निर्माण के उपरांत (26 जनवरी 1950) संविधान के अनुसार चार श्रेणियों के लोग भारत के नागरिक बने-

1.एक व्यक्ति जो भारत का मूल निवासी है। और तीन में से कोई एक शर्त पूरी करता है। ये शर्तें हैं यदि उसका जन्म भारत में हुआ हो या उसके माता पिता में से किसी एक का जन्म भारत में हुआ हो या संविधान लागू होने के पांच वर्ष पूर्व से भारत में रह रहा है। (अनुच्छेद 5) | इन तीनों शर्तों में किसी एक को होना चाहिए |

2.एक व्यक्ति जो पाकिस्तान से भारत आया हो और यदि उसके माता पिता या दादा-दादी अविभाजित भारत में पैदा हुए हो, वह भारत का नागरिक बन सकता है। (अनुच्छेद 6)

3.एक व्यक्ति जो 1 मार्च 1947 के बाद भारत जो 1 मार्च 1947 के बाद भारत से पाकिस्तान स्थानांतरित हो गया हो। लेकिन बाद में फिर भारत में पुनर्वास के लिए लौट आयें तो वह भारत का नागरिक बन सकता है। उसे पंजीकरण प्रार्थना पत्र के बाद छह माह तक रहना होगा (अनुच्छेद 7)

4.एक व्यक्ति जिसके माता पिता या दादा दादी अविभाजित भारत में पैदा हुए हों। लेकिन वह भारत के बाहर रह रहा हो। फिर भी वह भारत का नागरिक बन सकता है। यदि उसने भारत के नागरिक के रूप में पंजीकरण कुटनीतिज्ञ तरीके या पार्षदीय प्रतिनिधि के रूप में आवेदन किया हो। यह व्यवस्था भारत के बाहर रहने वाले भारतीयों के लिए बनाई गई है ताकि वे भारत की नागरिकता ग्रहण कर सके। (अनुच्छेद 8)

नागरिकता सम्बन्धी अन्य संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार है-

1.वह भारत का नागरिक नहीं होगा या भारत का नागरिक नहीं माना जायेगा जो स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर लेगा। (अनुच्छेद 9)

2.प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का है समझा जाता हैयदि संसद इस प्रकार के किसी विधान का निर्माण करे। (अनुच्छेद 10)

3.संसद को यह अधिकार है कि वह नागरिकता के अर्जन एवं समाप्ति से सम्बन्धित विषयों के संबंध में विधि बना सकती है। (अनुच्छेद 11)

5.3.7 नागरिकता अधिनियम 1955

नागरिकता अधिनियम (1955) संविधान लागू होने के बाद अर्जन एवं समाप्ति के बारे में उपबंध करता है इस अधिनियम को अब तक पाँच बार संशोधित किया गया है। ये संशोधन इस प्रकार है-

1.नागरिकता संशोधन अधिनियम 1986।

2.नागरिकता संशोधन अधिनियम 1992।

3.नागरिकता संशोधन अधिनियम 2003।

4.नागरिकता संशोधन अधिनियम 2005।

5. नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 |

उपरोक्त संशोधन अधिनियम द्वारा समय समय पर भारतीय नागरिकों के नागरिकता सम्बंधी प्राविधानों में संशोधन होता रहा है और नागरिकों को कुछ और अधिकार एवं सहूलियतें मिली जैसे-

1.भारतीय नागरिकों की संतान भारत से बाहर जन्म लेने पर भी भारतीय नागरिक होगी, किन्तु 1992 से पहले सिर्फ पिता के भारतीय होने पर नागरिकता मिलती थी।

2.भारत में 5 साल रहने के बाद कोई भी नागरिकता का आवेदन कर सकता है।

3. 30 जून 1987 के पहले भारत में जन्मा हर व्यक्ति भारत का नागरिक होता था किन्तु 1 जुलाई 1987 से भारत में जन्मा तथा माता-पिता में से किसी एक का भारतीय होना नागरिकता के लिए आवश्यक हो गया।

5.3.8 नागरिकता का अर्जन

नागरिकता अधिनियम 1955 नागरिक प्राप्त करने की पांच शर्तें बताता है- (1) जन्म (2) वंशानुगत (3) पंजीकरण (4) देशीकरण (5) किसी क्षेत्र के भारत में विलय से।

1. जन्म द्वारा- प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत में 26 जनवरी 1950 को या उसके पश्चात जन्म हुआ है जन्म से भारत का नागरिक है। भारत में पदस्थ विदेशी राजनयिक एवं शत्रु देश के बच्चों को भारत की नागरिकता अर्जन करने का अधिकार नहीं है।

2.वंश के आधार पर- कोई व्यक्ति जिसका जन्म 26 जनवरी 1950 को या उसके बाद परन्तु 10 दिसम्बर 1992 से पूर्व भारत के बाहर हुआ हो वह वंश क आधार पर भारत का नागरिक बन सकता है यदि उसके जन्म के समय उसका पिता भारत का नागरिक हो।

3.पंजीकरण के द्वाराः- कोई व्यक्ति जो (अवैध प्रवासी न हो) कुछ शर्ते पूरी करके भारत की नागरिकता अर्जित कर सकता है। ऐसे व्यक्ति अनेक प्रवर्गों के हो सकते हैं। उदाहरण वे व्यक्ति जिनका विवाह भारत के नागरिकों से हुआ है या वे व्यक्ति जो भारतीय मूल के है।

4.देशीकरण द्वाराः- जब किसी विदेशी का देशीकरण के लिए आवेदन भारत सरकार द्वारा मंजूर कर लिया जाता है तो वह भारत का नागरिक बन जाता है। नागरिकता संशोधन अधिनियन 2019 के द्वारा बंग्लादेश , पाकिस्तान और अफगानिस्तान से भारत आने वाले हिन्दू ,सिख बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई समुदाय (धर्म) वाले लोगों ,जो 31 दिसंबर 2014 तक या पूर्व में भारत में वहाँ की धार्मिक प्रताड़ना से बचने के लिए भारत में रह रहे हैं यह संशोधित विधि 2019 , 10 जनवरी 2020 से प्रभावित हो गई |इस नए प्रावधान के अनुसार जो प्रवासी भारत में अवैध रूप से रहते थे उन्हें नागरिकता हेतु आवेदन का अधिकार प्रदान करते हुए पूर्व में प्रावधानित 11 साल की अवधि को कम करके पाँच वर्ष कर दिया गया |उक्त संशोधित धारा 6(b) में पंजीकरण और देशीकरण द्वारा दोनों आधार पर नागरिकता प्राप्ति के तत्वों का समावेश किया गया |

5.राज्य क्षेत्र के सम्मिलित किए जाने परः- किसी विदेशी क्षेत्र द्वारा भारत का हिस्सा बनने पर भारत सरकार उस क्षेत्र से संबंधित विशेष व्यक्तियों को भारत का नागरिक घोषित करती है। ऐसे व्यक्ति उल्लिखित तारीख से भारत के नागरिक होते हैं। उदाहरण के लिए जब पांडिचेरी भारत का हिस्सा बना तो भारत सरकार ने नागरिकता (पांडिचेरी) आदेश 1962 जारी किया। यह आदेश नागरिकता अधिनियम 1955 के तहत जारी किया गया।

5.3.9 नागरिकता की समाप्ति

नागरिकता अधिनियम 1955 में अधिनियम या संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार प्राप्त नागरिकता खोने के तीन कारण बताए गए हैं त्यागना, वर्खास्तगी या वंचित किया जाना।

1.स्वैच्छिक त्याग- कोई भी भारत का नागरिक जो वयस्क है और जिसमे विधिक क्षमता है घोषणा करके नागरिकता का त्याग कर सकता है। यह घोषणा वही व्यक्ति कर सकता है जो भारत से भिन्न किसी देश का नागरिक या राष्ट्रिक है।

2.बर्खास्तगी के द्वारा- भारत का कोई नागरिक जिसने देशीकरण या रजिस्ट्रीकरण आदि द्वारा स्वेच्छा से नागरिकता अर्जित की थी और जो स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता अर्जित कर लेता है। भारत का नही रह जाता।

3.वंचित करना-केन्द्र सरकार द्वारा भारतीय नागरिक को आवश्यक रूप से बर्खास्त करना होगा यदि-

I. यदि नागरिकता फर्जी तरीके से प्राप्त की गयी हो।

II. यदि नागरिक ने संविधान के प्रति अनादर जताया हो।

III. यदि नागरिक ने युद्ध के दौरान शत्रु के साथ गैरकानूनी रूप से संबंध स्थापित किया हो या उसे कोई विरोधी सूचना दी हो।

IV. पंजीकरण या प्राकृतिक नागरिकता के पांच वर्ष के दौरान नागरिक को किसी देश में दो वर्ष की कैद हुई हो।

V. नागरिक सामान्य रूप से भारत के बाहर सात वर्षों से रह रहा हो।

यद्यपि भारतीय संविधान संघीय है और इसने दोहरी राजपद्धति (केन्द्र एवं राज्य) को अपनाया है, लेकिन इसमें केवल एकल नागरिकता की व्यवस्था की गई है अर्थात भारतीय नागरिकता। यहां राज्यों के लिए कोई पृथक नागरिकता की नहीं है। अन्य संघीय राज्यों जैसे-अमेरिका एवं स्विटजरलैण्ड में दोहरी नागरिकता व्यवस्था को अपनाया गया है।

अमरीका में प्रत्येक व्यक्ति न केवल अमेरिका का नागरिक है वरन उस राज्य विशेष का भी नागरिक है जहां वह रहता है। इस तरह उसे दोहरी नागरिकता प्राप्त है और इसी संदर्भ में उसे राष्ट्रीय सरकार एवं राज्य सरकार के दोहरे अधिकार प्राप्त है। यह व्यवस्था भेदभाव की समस्या पैदा कर सकती है। यह भेदभाव मताधिकार, सार्वजनिक पदों, व्यवसाय आदि को लेकर हो सकता है। ऐसी समस्या को दूर करने के लिए ही भारत में एकल नागरिकता की व्यवस्था को अपनाया गया है।

अभ्यास प्रश्न

1.भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में नागरिकता का वर्णन है?

(।) अनुच्छेद 6 से 11 तक (ठ) अनुच्छेद 5 से 11 तक

(ब्) अनुच्छेद 6 से 12 तक(क्) अनुच्छेद 5 से 12 तक

3.नागरिकता सम्बंधी प्रावधान भारतीय संविधान के किस भाग के अन्तर्गत किया गया है?

(।) भाग पांच (ठ) भाग एक (ब्) भाग दो (क्) भाग तीन

4.एकल नागरिकता की व्यवस्था को किस देश ने अपनाया है?

(।) अमेरिका (ठ) स्विटरजर लैण्ड (ब्) यू॰के॰ (क्) भारत

5.नागरिकता पर कानून बनाने का अधिकार किसे है?

(।) राष्ट्रपति (ठ) प्रधानमंत्री (ब्) संसद (क्) लोकसभा अध्यक्ष

5.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आपने नागरिकता का अर्थ महत्व एवं नागरिकता की संकल्पना तथा नागरिकता के विविध पक्ष, नागरिकता के सिद्धांत और नागरिकता का ऐतिहासिक विकास आदि का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। साथ ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में नागरिकता का अर्जन एवं समाप्ति कैसे होती है तथा भारतीय संविधान में नागरिकता के विभिन्न उपबन्धों का अध्ययन बहुत ही सार गर्भित ढंग से किया। नागरिक के कर्तव्य भावना का बोध नागरिकता से प्राप्त होता है। यदि व्यक्ति को किसी देश की नागरिकता दे दी जाय और उस व्यक्ति को उस देश की राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने का अवसर न दिया एवं उसके सारे अधिकार राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार न दिये जाय तो नागरिकता का कोई मतलब नहीं होगा। अर्थात नागरिकता हमें यह बोध कराता है कि व्यक्ति को सभी प्रकार के अधिकार मिलने चाहिए। जैसा कि हम जानते है कि प्राचीन काल में व्यक्ति को सारे अधिकार नहीं मिले थे, धनवान एवं निर्धन में भेद बरता जाता था। सभी लोग राज्य के सदस्य नहीं माने जाते थे।

लेकिन आज के लोक तंत्रीय राज्य के सभी स्थायी सदस्य वहां के नागरिक माने जाते है। यूनानी नगर राज्य में मात्र 10 प्रतिशत लोग ही राज्य के पूर्ण नागरिक माने जाते थे। दास, स्त्रियां और अन्य देशी को कोई नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। अरस्तू नागरिकता को शासक वर्ग का विशेषाधिकार समझता था। कुछ भी हो, प्राचीन यूनानी चिंतन में शासक वर्ग के इस विशेषाधिकार को कर्तव्य का रूप देकर इसके पालन पर बल दिया गया ताकि राजनीतिक समुदाय सब लोगों को उत्तम जीवन प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो।

यूनानी नगर राज्यों के पतन के बाद रोमन सम्राज्य के युग में नागरिकता की नई परिभाषा विकसित की गई। मध्युगीन यूरोप में जब राजनीतिक सत्ता पर धार्मिक सत्ता का वचस्व स्थापित हो गया तब

भी नागरिकता का अस्तित्व मिट सा गया। 16वीं शताब्दी में पुर्नजागरण काल में नागरिकता का विचार फिर से मुखर हुआ। इस प्रकार गौरवमय क्रांति ने मानव एवं नागरिक के अधिकारों की घोषणा के साथ नागरिकता का विचार अपने उत्कर्ष पर पहुंचा। 19वीं सदीं आते-आते उदारवाद के उत्कर्ष के साथ बाजार सम्बन्धों का विकास हुआ जिसने नागरिकता की नई अवधारणा को विकसित किया। इस प्रकार 21वीं सदी में प्रत्येक देश में नागरिकता अपनेपूर्ण अधिकारों के साथ प्रवेश कर चुका है।

प्रत्येक देश में व्यक्ति के अधिकारों के साथ एवं स्वतंत्रताओं में वृद्धि के साथ नागरिकता अपने पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर चुकी है। नागरिक अधिकारों में कानून के समक्ष समानता, दैनिक स्वतंत्रता, भाषण, विचार और आस्था की स्वतंत्रता, संघ बनाने और सभा करने की स्वतंत्रता, मुक्त विचरण की स्वतंत्रता, अनुबंध की स्वतंत्रता और सम्पति का अधिकार विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

इस सब के बावजूद अभी भी समाज में जो भी वर्ग घोर दरिद्रता और तरह-तरह की विवशता के कारण अमानवीय जीवन जी रहे है जिनके जीवन में आशा की कोई किरण नहीं रह गई है और जिनके उद्धार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इन उपेक्षित वर्गों की संख्या बहुत विशाल है।

कानूनी तौर पर भारत में बंधुआ मजदूरी और बाल मजदूरी समाप्त हो चुकी है। परंतु कहीं-कहीं अब भी यह प्रथा चली आ रही है। गांव में खेतिहर मजदूर छोटे किसान दो जून की रोटी के लिए तरसते है, बहुतायत में बच्चे कूड़े में से सामान चुन-चुनकर रोटी की जुगाड़ करते है। फुटपाथों पर जिंदगी गुजार देने वाले दिहाड़ी मजदूर और भी न जाने कितनी तरह के बेवस लाचार बीमार लोग कानून की दृष्टि से इस देश के माननीय नागरिक है। परन्तु यथार्थ जीवन में मनुष्य भी नहीं है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कानूनी जामा पहना देने से कुछ होने वाला नहीं है जब तक कि देश के बेबस लाचार लोगों को इंसानों की तरह जीने के लिए आवश्यक परिस्थितियां प्रदान नहीं की जाती तब तक देश में पूर्ण नागरिकता के विकास पर गर्व करना व्यर्थ ही नहीं, भ्रामक भी होगा।

5.5 शब्दावली

1. अधिनियम- .कानून

2. उपबंध- नियम, जो नागरिकां के लिए बनाये गये है।

3. संसद- राज्य सभा ,लोकसभा , राष्ट्रपति तीनों के संयुक्त नाम को संसद कहते है।

4. अर्जन- प्राप्त करना।

5. उपाश्रितवर्ग-निम्न श्रेणी का व्यक्ति

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ठ 2.। 3. ब , 4. क 5.ण्ब

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गावा, ओ०पी० (2004) राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, शिवानी प्रकाशन दिल्ली।

2. शमार्, डॉ० प्रभुदत्त (2000) पाश्चात् राजनीतिक विचारों का इतिहास, कालेज बुक डिपो, जयपुर

3. लक्ष्मीकांत, एम० (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली

4. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी०एच० आई० लार्निंग, नई दिल्ली।

5. बसु, डी०डी० (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान

2. जैन, डॉ० पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

3. सिंह, डॉ० वीरकेश्वर प्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नागरिकता का अर्थ बताते हुए इसके ऐतिहासिक विकास पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत कीजिए?

2. भारतीय नागरिकता के अर्जन एवं समाप्ति की विधियों का वर्णन कीजिए?

इकाई 6 : मूल अधिकार और मूल कर्तव्य

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मौलिक अधिकार
6.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण
6.3.2 समानता का अधिकार : अनुच्छेद 14 से 18
6.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार :अनुच्छेद 19 से 22
6.3.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार : अनुच्छेद 23 से 24
6.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार :अनुच्छेद25-28
6.3.6 सांस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार :अनुच्छेद29-30
6.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार: अनुच्छेद 32
6.4 मूल कर्तव्य
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10निबन्धात्मकप्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में हमने क्रमशः संविधान के स्वरुप, भारतीय संविधान की विशेषता, भारतीय संविधान में नागरिकता सम्बन्धी उपबंधों का अध्ययन किया है। इसी क्रम में मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्त्तव्य के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त किया यह जानकारी प्राप्त हो सकी कि कितने मौलिक अधिकार है और कितने मौलिक कर्त्तव्य।

इस इकाई 6 में हम छः मौलिक अधिकार का क्रमशः विस्तृत अध्ययन करेगें तथा मूल कर्त्तव्यों का अध्ययन करेगें भारतीय संविधान द्वारा मूल अधिकारों की व्यवस्था करने के पीछे संविधान निर्माताओं की धारणा थी कि स्वतन्त्र देश के नागरिक के रूप में भारतवासी अपना जीवन यापन कर सकें।

इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि मूल अधिकार के उल्लंघन होने पर अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में जाना भी मूल अधिकार है। इसी लिए डॉ0 अम्बेडकर इस अधिकार को संविधान की आत्मा कहा है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से हम जान सकेगें कि -

1.मौलिक अधिकार कितने है।

2.ये हमारे लिए मूलभूत है और क्यों है।

3.साथ ही यह भी जान सकेगें कि किन परिस्थितियों में मूल अधिकार पर प्रतिबंध लगाये जा सकते है।

4.यह जान सकेगें कि मौलिक कर्त्तव्य क्या है और इसे क्यों अपनाया गया और कहाँ से अनुसरण कियागया।

6.3 मौलिक अधिकार

''अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ है जिनके अभाव में कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता''।

मौलिक अधिकार राज्य के विरूद्ध व्यक्ति के अधिकार है ये राज्य के लिए नकारात्मक आदेश है अर्थात राज्य के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध लगाते है मौलिक अधिकारों के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। विश्व में सर्व प्रथम ब्रिटेन ने मौलिक अधिकारों को नागरिक अधिकार के रूप में स्वीकारा । इसे सन 1215 में वहाँ के सम्राट सर जॉन ने दिया ,जिसे मैग्नाकार्टा कहा जाता है| भारत ने भी अपने मौलिक अधिकार को भारत का मैग्नाकार्टा बताया।

इसके उपरांत बिल ऑफ़ राइट्स, (अधिकाओं का विधेयक), इंग्लैंड की संसद द्वारा 16 दिसंबर 1689 में पारित एक अधिनियम था, जो संवैधानिक मामलों और नागरिक अधिकारों को स्थापित करता है। बिल ऑफ़ राइट्स, संप्रभु के अधिकारों की सीमाओं के साथ ही संसद के अधिकारों को भी अंकित करती है। संसद के लिए निर्धारित किये गए अधिकारों में, नियमित संसदीय सत्र, मुक्त चुनाव और संसद में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे अधिकार शामिल किये गए थे। इसके अलावा यह कई नागरिक अधिकारों को भी स्थापित करता है, जिनमें, क्रूर और असामान्य दण्ड प्रदान करने पर रोक, और न्यायिक दायरे में प्रोटेस्टेंट लोगों को आत्मरक्षा हेतु शस्त्र रखने की अनुमति शामिल हैं।

चूंकि मौलिक अधिकार लिखित संविधान के अंग होते है और ब्रिटेन में अलिखित संविधान होने के कारण मौलिक अधिकार उस रूप में नहीं है जैसे भारत व अमेरिका को माना जाता है।

विश्व में सर्वप्रथम लिखित संविधान अमेरिका का बना लेकिन अमेरिका के मूल संविधान में भी मौलिक अधिकारों का समावेश नहीं या संविधान लागू होने के दो वर्ष बाद 1791 में प्रथम दस संविधान संशोधन के द्वारा अमेरिका में मौलिक अधिकारों को समाहित किया गया। अमेरिका में मौलिक अधिकार प्राकृतिक अधिकार के रुप में परिभाषित है। प्राकृतिक अधिकार के अर्न्तगत वे सभी अधिकार आ जाते है जो कि व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। ये असीमित है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय प्राकृतिक या नौसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को अपनाकर मौलिक अधिकारों को घटा-बढ़ा सकता है। इसलिए अमेरिका की न्यायपलिका विश्व की सबसे शक्तिशाली न्यायपालिका के नाम से जानी जाती है।

भारतीय संविधान के अनु0 12 से लेकर 35 तक में मौलिक अधिकारों का व्यापक विश्लेषण व विवेचन किया गया है। अनु 12 व 13 में मौलिक अधिकार की प्रकृति बतायी गयी है। अनु0 33 व 34 में मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति संसद को प्रदान की गयी है। अनु0 35 के

अन्तर्गत मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद को कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। इस प्रकार अनु0 14 से लेकर अनु0 32 तक द्वारा जिसमें अनु0 31 को छोड़कर और 21(क) को जोड़कर अर्थात कुल 19 अनुच्छेदों के द्वारा मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार नागरिकों और गैर नागरिकों दोनों को प्रदान किया गया है लेकिन अनु0 15, 16, 19, 29 और 30 विदेशियों को प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कृत्रिम अधिकार के रुप में परिभाषित है अतः ये सीमित है। संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को छोड़कर व्यक्ति अन्य किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता और न्यायपालिका केवल उन्हीं मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है जो कि संविधान ने उन्हें प्रदान किया है।

मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है, अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराए जा सकते है। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में उच्च एवं उच्चतम न्यायालय दोनों को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकारों के द्वारा भारत में राजनितिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है। मौलिक अधिकार न तो निरंकुश है और न असीमित प्रत्येक अधिकारों पर विभिन्न आधारों पर युक्त-युक्त निर्बन्धन लगाया गया है। मौलिक अधिकारों को आपातकाल में राष्ट्रपति निलम्बित कर सकता है, और संसद कानून बनाकर उसे स्थगित कर सकती है।

मूल संविधान में कुल सात मौलिक अधिकारों का समावेश था लेकिन 44 वें संविधान संसोधन अधिनियम के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से हटाकर कानूनी अधिकार बना दिया गया और इसे अनु0 300 (क) में रखा गया है और कहा गया है कि संसद विधि बनाकर नागरिक को उसकी सम्पत्ति से वंचित कर सकती है लेकिन इसके लिए सरकार को उचित मुआवजा देना होगा |

6.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

वर्तमान में केवल 6 मौलिक अधिकार ही है जो कि निम्नलिखित हैः-

1.समानता का अधिकार अनु0 14 - 18

2.स्वतन्त्रता का अधिकार अनु0 19-22

3.शोषण के विरूद्ध अधिकार अनु0 23- 24

4.धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार अनु0 25-28

5.संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार अनु0 29-30

6.संवैधानिक उपचारों का अधिकार अनु0 32

मौलिक अधिकारों का मुख्य उद्देश्य राज्य और व्यक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करना है।

अनु0 12 इस अनु0 में राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है इसमें कहा गया है कि यहाँ राज्य के अन्तर्गत भारत सरकार संद्य विधानमण्डल राज्यों की सरकारें राज्यों के विधानमण्डल तथा भारत राज्य क्षेत्र में भारत सरकार के अधीन सभी स्थानीय एवं अन्य प्रधिकारी (शक्ति वैधता) शामिल है। यहाँ स्थानीय के अन्तर्गत नगर निगम नगर पालिका जिला बोर्ड पंचायती राज्य व जिलापरिषद आदि आता है तथा प्राधिकारी के अन्तर्गत जीवन बीमा निगम लोक सेवा आयोग विश्वविद्यालय रेलवे बैंक आदि सभी शामिल है।

कौन राज्य के अन्तर्गत आता है और कौन नहीं आता इसे न्यायपालिका तय करता है जब कोई व्यक्ति मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय की शरण में जाता है तो न्यायालय देखता है कि उसे राज्य माना जाए या न माना जाए। न्यायपालिका ने वर्तमान में वैष्णों देवी के मंदिर और अमरनाथ की गुफा को भी राज्य की संज्ञा प्रदान किया है।

उपर्युक्त सभी के विरूद्ध व्यक्तियों को मौलिक अधिकार प्राप्त है।

अनु0 13 इससे मौलिक अधिकार के प्रकृति और स्वरूप की विवेचना की गयी है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 13 (1) संविधान लागू होने के पूर्व में बनायी गयी विधियाँ यदि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती है तो वे उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगीं।

अनु0 13 (2) संविधान लागू होने के बाद भी राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो कि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हो यदि राज्य ऐसी कोई विधि बनाएगा तो वह उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगी।

अनु0 13 (3) यहाँ विधि शब्द के अर्न्तगत कानून,उपकानून, नियम, उपनियम, आदेश, अध्यादेश,संविदा, समझौता, संन्धि,करार आदि सभी शामिल है।

इस अनु0 में निम्नलिखित दो सिद्धान्त है :-

1.पृथक्करण का सिद्धान्त

इसका अर्थ यह है कि यदि किसी कानून का कोई भाग मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करता है तो केवल वही भाग शून्य घोषित होगा पूरा कानून नहीं लेकिन उस भाग के निकाल देने से पूरे कानून का कोई अर्थ नही रह जाता तो पूरा कानून ही शून्य घोषित हो जाएगा।

2.आच्छादन का सिद्धान्त

यदि पूर्व में बनायी गयी विधियों मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती है तो वे नष्ट नहीं हो जाती बल्कि उन पर मौलिक अधिकारों की छाया आ जाती है यदि संसोधन करके उल्लंघन सक वाली विधियां ठीक कर ली जाएं तो वे पुनः जीवित हो जाती है। इसे चन्द्र ग्रहण का सिद्धान्त भी कहते है।

अनु0 13 के अन्तर्गत नयायपालिका को मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है।

6.3.2 समानता का अधिकार : अनुच्छेद 14 से 18

समानता फ्रांसीसी क्रांन्ति को देन है। भारतीय संविधान के अनु0 14 से 18 तक में समानता के विभिन्न रूपों कानूनी समानता सामाजिक समानता अवसर की समानता आदि का उल्लेख है।

अनु0 14 भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा।

इसमें निम्नलिखित दो बाते है ---

1.विधि के समक्ष समता यह ब्रिटिश संविधान से गृहित है यह कानूनी समानता का नकारात्मक दृष्टिकोण है इससे निम्न 3 अर्थ निकलता है।

1.देश में कानून का राज्य

2.देश में सभी व्यक्ति चाहे वे जिस जाति धर्म व भाषा के हों सभी एक सामान्य कानून के अधीन है।

3.कोई भी व्यक्ति कानून के ऊपर नहीं है।

2..विधियों के समान संरक्षण यह अमेरिकी संविधान से गृहीत है। इसका अर्थ यह है कि समय परिस्थितियों वाले व्यक्तियों को कानून के समक्ष समान समझा जाएगा क्योंकि समानता का अर्थ

सबकी समानता न होकर समानों में समानता है। अर्थात एक ही प्रकार के योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के साथ जाति, धर्म भाषा व लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए।

भारतीय संविधान विधायिन वर्गीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जो कि अनु0 14 का उल्लंघन नहीं करता है।

विधायिनी वर्गीकरण का अर्थ है यदि एक व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुसार अन्य से भिन्न है तो उसे एक वर्ग माना जाएगा और समानता का सिद्धान्त उस पर अकेले लागू होगा लेकिन इसका आधार वैज्ञानिक तर्कसंगत और युक्त होना चाहिए।

1.इसमें नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त निहित है।

2.यह भारतीय संविधान का मूल ढ़ाचा है।

3.इसमें विधि के शासन का उल्लेख है।

4.इसमें सर्वग्राही समानता का सिद्धान्त पाया जाता है।

अनु0 15 इसमे सामाजिक समानता का उल्लेख है इसमें निम्न प्रावधन है।

15 (1) भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध धर्म मूलवंश जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

15 (2) एक नागरिक दूसरे के साथ धर्म मूल वंश, जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर दुकानों होटलों सार्वजनिक भोजनालयों व सार्वजनिक मनोरजन के स्थानों तथा राज्य विधि द्वारा पूर्णतः व अशतः पोषित हो नलकूपों तलाबों सड़कों व सार्वजनिक समागम के स्थानों पर भी कोई भेदभाव नही करेगा।

अपवाद इसका अर्थ अस्थायी व्यवस्था से है। यह कुछ परिस्थितियों वश दिया गया है इसके आधार पर उपर्युक्त का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

15(3) राज्य स्त्रियों और बच्चों को विशेष सुविधाएं दे सकता है, वर्तमान में महिलाओं को दिया गया आरक्षण का आधार यही अनु0 है।

15(4) राज्य सामाजिक व शौक्षणिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों को विशेष सुविधाएं दे सकता है।

वर्तमान में OBC, SC ,ST का आधार यही अनु0 है।

15(5) के प्रथम संविधान संसोधन अधिनियम 1951 (18 June)को संविधान में जोड़ा गया घ्यान रहे कि चम्पाकम दोराई राजन बनाम मद्रास राज्य के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने सरकार द्वारा जातियों के आधार पर मेडीकल कालेज में सीटों के आवंटन को अवैध घोषित कर दिया गया था उसे प्रभावहीन बनाने के लिए इसे संविधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 16 : इसमें अवसर की समानता का उल्लेख है भारत में एकल नागरिकता है इस बात का उल्लेख भारतीय संविधान के किसी अनु0 में नहीं है लेकिन इसका विचार अप्रत्यक्ष रूप से इसी में निहित है। इसमें निम्न प्रावधान है

अनुच्छेद 16(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्ति या नियोजन पाने के अवसर की समानता होगी।

अनुच्छेद 16(2) भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्ति या नियोजन पाने में अवसर की समानता से वचिंत नहीं करेगा अर्थात राज्य किसी भी नागरिक को धर्म मूलवंश, जाति, लिंग जन्म, स्थान उद्भव व निवास स्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक आधार पर सरकारी पदों नियुक्ति व नियोजन पाने में अवसर की समानता से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 16 (3) राज्य निवास स्थान के आधार पर कुछ विशेष पदों पर भर्ती कर सकते है लेकिन इसके सन्दर्भ में कानून बनाने का अधिकार उस राज्य को नहीं बल्कि संसद को प्राप्त होगा और संसद इस प्रकार से कानून बनायेगी कि वह अर्हता देश भर में समान रुप से लागू रहेगी।

अनुच्छेद 16(4) यदि राज्यों की राय में सरकारी नौकरियों में सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो राज्य उन्हें आरक्षण दे सकता है।

वर्तमान में इसी अनु0 के द्वारा O.B.C., S.C.व S.T. को आरक्षण प्रदान किया गया है। ध्यान रहे कि आरक्षण सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग को दिया जा सकता है। लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान किया गया है।

वर्गो को दिया गया आरक्षण उर्ध्वाधर है जबकि महिलाओं को दिया गया आरक्षण क्षैतिज है। अर्थात प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ अपने ही वर्ग में आरक्षण की हकदार होगी। ध्यान रहे कि महिलाओं को आरक्षण इस अनु0 के द्वारा नहीं दिया गया है क्योंकि प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत नहीं आती।

पिछड़े वर्ग को आरक्षण मण्डल रिपोर्ट के आधार पर 27% वी0 पी0 सिंह सरकार द्वारा 1990 में दिया गया। इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया था कि आरक्षण की सीमा 50% से अधिक नहीं हो सकती और प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जा सकता।

इसे प्रभावहीन बनाने के लिए अर्थात SC व ST को प्रोन्नति में आरक्षण देने के लिए 77 वां संविधान संसोधन अधिनियम पारित करके संविधान में अनु0 16 (4) (क) जोड़ा गया तथा आरक्षण की सीमा 50% से अधिक बढ़ाने के लिए 81 वां संविधान संसोधन अधिनियम लाया गया और 16 (ख) जोड़ा गया।

अनुच्छेद 16 (4क) यदि राज्यों राय में सरकारी नौकरियों SC व ST का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो राज्य उन्हें प्रोन्नति में भी आरक्षण दे सकता है।

अनुच्छेद 16 (4ख) यदि पूर्व वर्ष में आयी रिक्तियां SC व ST के उम्मीदवार से नहीं भरी जाती तो आगे उन पर 50% की आरक्षण सीमा लागू नहीं होगी।

वैकलाग का विचार इसी में निहित है। यदि अनु0 16(4ख) को अनु0 16(4) के साथ मिलाकर पढ़ा जाएं तो वैकलाक का अधिकार OBC को भी प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 17 इसमें भी सामाजिक समानता का ही उल्लेख है इसका उद्देश्य जात-पात के भेदभाव को समाप्त करना है। छुआछुत भारत की एक बहुत बड़ी समस्या थी इस अनु0 पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव है।

इसमें कहा गया है कि अश्पृश्यता का अन्त किया जाता है इसका प्रत्येक रूप में आचरण निषद्ध है तथा इसका उल्लघंन विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध होगा।

इसे व्यवहारिक रूप देने के लिए संसद ने अश्पृश्यता अपराध उन्मूलन अधिनियम 1955 पारित किया। इसे 1976 में और कठोर बनाते हुए कहा गया कि इसके भेदभाव में दोषी पाए गए व्यक्ति को चुनाव लड़ने का भी अधिकार प्राप्त नही होगा।

अनुच्छेद 18 स्वतन्त्रता के पूर्व अंग्रेजों ने भारत में विभिन्न प्रकार की उपाधियां वितरित करके भारत को विषमतामूलक बनाया था अतः भारत में समानता लाने के लिए उपाधियों का अन्त करना आवश्यक था। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 18(1) राज्य अपने नागरिकों को विद्या या सेना सम्बन्धी उपाधि को छोड़कर अन्य कोई उपाधि नहीं देगा।

अनु0 18(2) कोई भी नागरिक विदेशों से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

अनु0 18(3) कोई गैर नागरिक या विदेशी जो भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद पर है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना विदेशों से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

अनु0 18(4) कोई गैर नागरिक जो कि भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद पर है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कोई भेट या उपलब्धि स्वीकार नहीं करेगा।

बालाजी राघवन बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनु0 18 जन्म आधारित उपाधियों का निषेध करता है लेकिन कर्म आधारित उपाधियों का नहीं भारत रत्न पद्म भूषण पद्मविभूषण व पद्मश्री आदि ऐसी उपाधियों है जो जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित है ये विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान के लिए दी जाती है अतः अनु 18 इनका निषेध नहीं करता लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इन उपाधियों का प्रयोग नाम के आगे व पीछे नहीं किया जायेगा जनता पार्टी सरकार ने 1977 में भारत रत्न आदि जैसी उपाधियों पर रोक लगा दिया लेकिन 24 जनवरी 1980 से इन्दिरा सरकार ने इसे पुनः प्रारम्भ कर दिया।

6.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार :अनुच्छेद 19 से 22

स्वतन्त्रता भी फ्रांसीसी क्रांन्ति की देन है। इसका दृष्टिकोण सकारात्मक है। स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में सामंजस्य है। भारतीय संविधान के अनु0 19 से लेकर अनु0 22 तक में स्वतन्त्रता का व्यापक विश्लेषण व विवेचन किया गया है।

अनुच्छेद 19 यह भारतीय संविधान का मूल ढ़ाचा है। यह स्वतन्त्रता केवल भारतीय नागरिकों को ही प्रदान की गयी है। अनु0 19 में वर्णित सभी स्वतन्त्रताएँ सामाजिक है। अनु0 19 में वर्णित स्वतन्त्रता आपातकाल में अनु0 358 के अन्तर्गत स्वतः निलम्बित हो जाती है। अनु0 19(1) क से लेकर अनु0 19(1) छ तक में सात स्वतन्त्रताओं का उल्लेख था लेकिन अनु0 19(1)च में वर्णित सम्पत्ति के अर्जन धारण और व्ययन की स्वतन्त्रता को निकाल देने से वर्तमान में 6 स्वतन्त्रताएँ है। प्रत्येक स्वतन्त्रता पर अनु0 19(2) से लेकर 19 (6) तक द्वारा क्रमशः युक्त 2 निर्बधन लगाया गया है। यह निर्बन्धन क्रमशः राष्ट्र की एकता व अखण्डता भारत की सम्प्रभुता सार्वजनिक हित आदि के आधार पर लगाया गया है।

अनु0 19(1)क इसमें भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रावधान है। प्रेस की स्वतन्त्रता इसी अनु0 में निहित है। अनु0 19(2) के द्वारा निर्वधन है।

अनु0 19(1)ख इसमें शान्तिपूर्ण एवं निरायुध सम्मेलन की स्वतन्त्रता का प्रावधान है इसी में जलूस निकालने का अधिकार निहित है यह धार्मिक व राजनीतिक दोनों प्रकार का हो सकता है 19(3) द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)ग इसमें संगम या संघ बनाने की स्वतन्त्रता का प्रावधान है इसी में राजनीतिक दल दबाव समूह तथा सामाजिक व सांस्कृतिक संगठन बनाने का विचार निहित है 19(4) के द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)घ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को अवाध भ्रमण की स्वतन्त्रता प्राप्त है अनु0 19(5) के द्वारा अनुसुचित जनजाति और सार्वजनिक हित के आधार पर प्रतिबध है।

अनु0 19(1)ड़ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कहीं आवास बनाने निवास करने व बस जाने की स्वतन्त्रता प्राप्त है 19(5) के द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है। यह जम्मू कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होता है।

अनु0 19(1)च निरसित

अनु0 19 (1)छ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कोई वृत्ति व्यापार व्यवसाय या कारोबार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अनु0 19(6) के द्वारा सार्वजनिक हित के आधार पर इस भी प्रतिबन्ध है।

अनु0 20 इसमें अपराध की दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण का प्रावधान है। इसमें निम्न तीन बाते कही गयी है।

अनु0 20(1) अपराध करते समय लागू कानून के अतिरिक्त अन्य किसी कानून से व्यक्ति को सजा नहीं दी जाएगी अर्थात यह कार्योत्तर विधियों से संरक्षण प्रदान करता है।

अनु0 20(2) एक ही अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दोहरा दण्ड नहीं दिया जाएगा लेकिन यदि अपराध की प्रकृति भिन्न भिन्न है तो व्यक्ति को दोहरा दण्ड दिया जा सकता है अर्थात यह दोहरे दण्ड का निषेध करता है। यह प्रावधान अमेरिका से गृहीत है।

अनु 20(3) किसी व्यक्ति को अपने विरुद्ध गवाहि या साक्ष्य देने के लिए वाध्य नहीं किया जाएगा। अर्थात यह आत्म अभिसंशन का अधिकार देता है।

अनु 21 भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थानपित प्रक्रिया से ही वंचित करेगा अन्यथा नहीं।

ए0 के0 गोपालन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह स्वतन्त्रता कार्यपालिका के विरुद्ध नही अर्थात विधायिका कानून बनाकर किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित कर सकती है।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विदेश भ्रमण की स्वतन्त्रता को दैहिक स्वतन्त्रता में निहित मौलिक अधिकार मानते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को बढ़ावा दिया। उसके अनुसार जो कानून अरिजु रिजु, आयुक्त युक्त और न्याय सम्मत नहीं है वह अनु0 21 के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जो स्वतन्त्रता अनु0 19 में नहीं है वह दैहिक स्वतन्त्रता में निहित है उसने प्राण शब्द की व्याख्या करमे हुए कहा कि इसका अर्थ भौतिक अस्तित्व या पशुवत अस्तित्व से नहीं है बल्कि इसका अर्थ मानवीय और गरिमापूर्ण जीवन जीना है और वे सभी बातें जो किसी व्यक्ति को ऐसा करने से रोकती है अनु0 21 के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अब तक अनु0 21 में निहित कई मौलिक अधिकारों की घोषणा कि जिसमें से कुछ निम्न है।

1. मानवीय प्रतिष्ठा के साथ जीने का अधिकार

2. सूचना पाने का अधिकार

3. सुनवाई का अधिकार

4. आश्रय प्राप्त करने का अधिकार

5. निजता का अधिकार

6. अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध अधिकार

7. प्रतिष्ठा का अधिकार

8. विदेश यात्रा करने का अधिकार

9. स्वास्थ का अधिकार

10. स्वच्छ जल पाने का अधिकार

11. पर्यावरण प्रदूषण से रक्षा का अधिकार

12. प्राथमिक शिक्षा का अधिकार

उपर्युक्त मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा घोषित है इनका दावा तब तक नही कर सकते जब तक ये हमें संवैधानिक अधिकार के रुप में नहीं मिलते वैसे इन्हें हम वैधानिक अधिकार की संज्ञा दे सकते है।

86 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा प्राथमिक शिक्षा पाने के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया गया।

21(क) राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा।

86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा संविधान के मूल कर्तव्यों के अध्याय में एक अन्य खण्ड जोड़ा गया है, क्योकि एक नवीन अनुच्छेद 21 क जोड़कर 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बालकों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है।

6 वर्ष की आयु से 14 वर्ष की आयु कें बालकों के माता पिता और प्रतिपाल्य के संरक्षको का यह कर्तव्य होगा कि वे उन्हे शिक्षा का अवसर प्रदान करें।

वस्तुतः संविधान में उल्लेखित मूल कर्तव्य प्रवर्तनीय नहीं है। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में अनेक उपबन्धों के माध्यम से इनके हनन होने पर संरक्षण की व्यवस्था की गयी है लेकिन मूल कर्तव्यों का पालन न करने पर किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं है यद्यपि अनुच्छेद 54 क राज्य पर अभिव्यक्त रूप से कोई मूल कर्तव्य आरोपित नहीं करता है तथापि भारत के सभी नागरिकों का कर्तव्य राज्य का सामूहिक कर्तव्य है।

रणधीर सिंह बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समाजवाद को अनु0 14 व 16 के साथ मिलाकार पढ़ने पर सर्वोच्च न्यायालय ने समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को मौलिक अधिकार घोषित किया।

अनुच्छेद 22 इसमें बन्दी बनाए जाने के विरुद्ध व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किया गया है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 22(1) बन्दी बनाए जाने वाले व्यक्ति को बन्दी बनाए जाने के कारणों से तत्काल अवगत कराना होगा।

अनु0 22(2) बन्दी बनाए गए व्यक्ति 24 घण्टे के अन्दर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित करना होगा और बन्दी बनाए जाने का कारण बताना होगा। इसी में कहा गया है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को अपने रुचि या मनपसन्द के वकील से परामर्श लेने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनु0 22(3) निम्नलिखित दो प्रकार से गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों पर उपर्युक्त नियम लागू नहीं होता

क .निवारक निरोध के अधीन गिरफ्तार किया गया व्यक्ति

ख. शत्रु देश के व्यक्ति पर

(क) निवारक निरोध किसी घटना के घटित होने के पूर्व ऐसी कार्यवाही करना जिससे वह घटना घटित न होने पाए निवारक निरोध कहलाता है। इसके अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति पर निम्न नियम लागू होता है।

(1) उसे तीन महीने तक बिना कोई कारण बताए जेल में निरूद्ध रखा जा सकता है

(2) तीन महिने बाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उसके समकक्ष व्यक्ति की अध्यक्षता में बने एक तीन सदस्यीय परामर्श दात्री बोर्ड के समक्ष उपस्थित करना होगा।

(3) पूछं तांछ के दौरान यदि उसे बोर्ड निर्देश पाता है तो रिहा करने का आदेश देगा और यदि दोषी पाता है तो उसे जेल में रखकर मुकदमा चलाया जाएगा। अब उस व्यक्ति को भी अपनी गिरफ्तारी के कारणों को जानने का अधिकार प्राप्त होगा और उसे बचाव के लिए न्यायालय में अभ्यावेदन करने का अधिकार होगा और अपने बचाव के लिए वकील से परामर्श भी ले सकता है।

6.3.4 शोषण के विरूद्ध अधिकार : अनुच्छेद 23 से 24

संविधान की प्रस्तावना में वर्णित व्यक्ति की गरिमा को बहाल करने के लिए तथा भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना करने के लिए अनु0 23 व 24 को मौलिक अधिकार के रुप में शामिल किया गया यह सरकारी व प्रावेट दोनों व्यक्तियों के विरुद्ध प्राप्त है।

अनु 23(1) मनुष्यों के क्रय विक्रय विशेषकर स्त्रियों व बच्चों के विक्रय पर रोक लगाया जाता है तथा बेगार व बालत् श्रम को निःषिद्ध घोषित किया जाता है।

अनु0 23 (2) राज्य राष्ट्रीय हित में बल पूर्वक कार्य ले सकता है जैसे अनिवार्य सेना में भर्ती का अभियान।

अनु0 24 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखानों या परिसंकटमय परियोजनाओं में नही लगाया जाएगा।

6.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार :अनुच्छेद25- 28

भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है लेकिन इसकी परिभाषा संविधान के किसी भी अनु0 में नहीं दी गयी है। भारतीय संविधान के अनु0 25 से लेकर 28 तक में धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकारों को व्यापक प्रावधान है यह अधिकार अल्प संख्यक व बहुसंख्यक दोनों को ही प्राप्त है। स्वास्थ्य नैतिकता व सुव्यवस्था के आधार पर भी युक्त निर्बन्धन लगाया गया है।

अनुच्छेद 25(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तः करण की स्वतन्त्रता तथा किसी भी धर्म को अबाध रूप से मानने आचरण करने व प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

अनुच्छेद 25(2) लौकिक राजनैतिक आर्थिक व वित्तीय आधारों पर उपर्युक्त स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है हिन्दू मन्दिरों को उसके सभी वर्गो के लिए सेवा लेने का आदेश दिया जा सकता है। इसमें सिक्ख धर्म के लोग भी शामिल है| जैन धर्म व बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है। मन्दिरों मस्जिदों गिरिजाघरों आदि में लगने वाले लाउडस्पीकरों पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। मन्दिरों में आने वाले चढ़ावे का उसके कर्मचारी बिन्दो के बीच वितरण पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। कृपाण धारण करना सिक्ख धर्म का अंग है।

अनुच्छेद 26 इसमें धार्मिक कार्यो के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। धार्मिक कार्यो की पूर्ति या प्रयोजन हेतु किसी भी संस्था की स्थापना करने या पोषण करने का अधिकार प्राप्त है। जगम(चल) व स्थावर(अचल) सम्पत्ति के अर्जन व स्वामित्व का अधिकार प्राप्त है। ऐसा प्रशासन विधि के अनुसार होगा।

अनुच्छेद 27 धार्मिक कार्यो हेतु किसी व्यक्ति को कर देने या न देने के लिए वाध्य नही किया जा सकता है।

अनुच्छेद 28 राज्य निधि द्वारा पूर्णतः पोषित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी लेकिन ऐसी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है जिनका प्रशासन तो राज्य करता है लेकिन जो किसी ऐसे धर्मस्व या ट्रस्ट के अधीन स्थापित है जिनका उद्देश्य ही धार्मिक शिक्षा देना है लेकिन ऐसी संस्थाओं के प्रार्थना सभाओं में किसी व्यक्ति को शामिल होने या न होने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता यदि व अवयस्क है तो अभिभावक की सहमति से शामिल हो सकता है।

6.3.6 संस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार :अनुच्छेद 29- 30

यह बहुसंख्यको की हिंसा से अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए संविधान निर्माताओं ने संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया यद्यपि संविधान में अल्पसंख्यक की कोई व्याख्या नहीं की गयी है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी धार्मिक एवं भाषायी आधार पर अल्पसंख्यक को स्वीकार करते हुए उसकी अस्पष्ट परिभाषा से इन्कार कर दिया। उसके बारे में एक सर्वमान्य मान्यता है कि ऐसे वर्ग पर वर्गो का समूह जिसकी जनसंख्या भारत राज्य क्षेत्र के कुल जनसंख्या से 50%कम है अल्पसंख्यक वर्ग के अन्तर्गत आते है जम्मू कश्मीर इस परिभाषा में शामिल नहीं है वहाँ हिन्दू अल्प संख्यक है। भारतीय संविधान के अनु0 29 व 30 में इसका वर्णन है।

अनुच्छेद 29(1) भारत राज्य क्षेत्र में अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों की जो भाषा संस्कृति या लिपि है उसे उन्हें बनाए रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 29(2) धर्म मूल वंश भाषा व जाति के आधार पर किसी नागरिक को किसी संस्था में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30(1) भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में या भाग के अनुभाग में प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों को अपने रूचि व मनपसन्द की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने या पोषण करने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 30(2) राज्य किसी संस्था को सरकारी सहायता देते समय इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगी कि यह संस्था अल्पसंख्यक वर्ग के हित में है।

6.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार: अनुच्छेद 32

यह स्वंय एक मौलिक अधिकार होते हुए अन्य मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। डॉ0 भीमराव आम्बेडकर ने इस पर प्रकाश डालते हुए संविधान निमात्री सभा में कहा यदि कोई मुझसे पूछे कि भारतीय संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद है जिसे निकाल देने पर संविधान शून्य प्राय हो जाएगा तो मै इस अनुच्छेद के सिवाय अन्य किसी का नाम नहीं लूगाँ।

डॉ0 भीमराव आम्बेडकर ने अनु0 32 को संविधान का हृदय व आत्मा बताया। अनु0 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय का संरक्षक है और अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय संविधान का अभिभावक है।

अनुच्छेद 32 (1) व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों को क्रियान्वित करने के लिए उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकता है।

अनुच्छेद 32(2) इसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के आदेश निर्देश रिटें या प्रलेख जारी कर सकता है। इसी के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय संविधान का संरक्षक है। अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय उसी प्रकार की रिटें जारी करकें संविधान का अविभावक बन जाता है।

जहाँ अनु0 26 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के साथ अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए भी रिटें जारी कर सकता है अर्थात उसे विवेकाधिकार की शक्ति प्राप्त है। वहीं पर अनु0 32 (2) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ही रिटें जारी कर सकता है। अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए वह रिटें लब जारी करता है जब 139(क) के अन्तर्गत संसद विधि बनाकर उसको ऐसा करने का अधिकार दें।

मूल संविधान में इस बात का प्रावधान था कि जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है केवल उसी व्यक्ति के न्यायालय जाने पर न्यायालय रिटें जारी करेगा लेकिन अब जनहितवाद के सिद्धान्त के आ जाने पर ऐसा नही रहा।

जनहित वाद या लोकहित वाद ;

जनहित वाद का सिद्धान्त भारत ने अमेरिका से लिया है पिपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में बैठी संविधान पीठ ने सन 1980 में एक निर्णय दिया जिसे जनहित वाद के नाम से जाना गया। इसमें कहा गया कि यदि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण हुआ है और वह व्यक्ति न्यायालय जाने में समक्ष नहीं है, तो यदि उसका कोई मित्र या रिश्तेदार या शुभ चिन्तक एक पत्र के माध्यम से भी न्यायालय को सूचित करे तो न्यायालय उस पत्र को उसी प्रकार से स्वीकार्य करेगा जैसे रिटपिटीशन स्वीकार की जाती है। बशर्त यह पत्र राजनीतिक भेदभाव और पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो अन्यथा वह व्यक्ति दण्ड का भागीदार भी होगा।

इस सिद्धान्त के आ जाने से न्यायपालिका ने कार्यपालिका व विधायिका के तमाम कार्यो को अवैध घोषित किया जो कि मौलिक अधिकारों के विरूद्ध थे इस लिए कुछ लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता की ओर बढ़ रही है। न्यायिक सक्रियता का संविधान में कोई उपबन्ध नहीं है, यह न्यायिक पुनरावलोकन का विस्तारित रूप है। न्यायिक सक्रियता का आधार जनहित वाद है।

अनु0 32(2) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय निम्न 5 रिटें जारी करता है ---

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण 2.परमादेश 3.प्रतिषेध 4. उत्प्रेषण 5.अधिकारपृच्छा

- बंदी प्रत्यक्षीकरण(Habeas corpus (सशरीर प्राप्त करना))-किसी बंदी व्यक्ति के न्यायलय के समक्ष लाकर उसके गिरफ्तारी का कारण जानना ,यदि कारण वैध नही है तो उसे मुक्त करना | यह रीत निवारक नजर्बंदियों पर लागू नहीं होती है

- परमादेश (Mandamus) (हम आज्ञा देते है)-व्यकि अथवा संस्था को कर्तव्य पालन के आदेश दिए जाते है (यह आदेश राष्ट्रपति और राज्यपाल को नहीं)

- प्रतिषेध (Prohibition-मना करना)-उच्चतम तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता है जिसका उद्देश्य अधीन न्यायलय को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करने से रोकना है

- उत्प्रेषण (Certiorari- और अधिक सूचित होना)- तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता है ,जिसमे अधीनस्थ न्यायलय से वहाँ चल रहे वाद से सम्बंधित कागजात मांगे जाते है |प्रतिषेध रोग के रूप में ,उत्प्रेषण उपचार के रूप में

- अधिकार पृच्छा –(Quo-warranto)- इस लेख द्वारा न्यायलय किसी सार्वजनिक पद पर कार्य करने वाले को वह कार्य करने से रोकता है ,जिसके वह कानूनी रूप से योग्य नहीं है

यहाँ हम यह भी सपष्ट करना चाहते हैं कि अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय ऐसी जारी कर सकता है |

अनुच्छेद 33

संसद विधि बनाकर सशस्त्र बलों (अर्द्धसैनिक बल) सेना बलों व पुलिस बलों के मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है ऐसा इसलिए कि उसमें परस्पर अनुशासन बना रहे जिससे वे अपने दायित्व एवं कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

अनुच्छेद 34

भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में ऐसा विधि (मार्शल ला) लागू है तो संसद कानून बनाकर नागरिकों के मौलिक अधिकारों को स्थगित कर सकती है।

अनुच्छेद 35

मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद विधि बना सकती है इसी अनु0 के अन्तर्गत अश्पृश्यता अपराध अधिनियम जैसे कानून बने।

6.4 मूल कर्तव्य

यदि किसी सभ्य समाज के प्रमुख लक्षणों में एक है उसके नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधुकार ,जो उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए नितांत आवश्यक है तो दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है उसके नागरिकों के कर्तव्य | क्योंकि सभी के अधिकारों की पूर्ती तभी हो सकती है जब सभी अपने कर्तव्यों के अनुपालन के प्रति भी संवेदनशील हों |

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों पर लगाया गया प्रतिबन्ध ही मौलिक कर्तव्यों की याद दिलाता है और जब कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता ग्रहण करता है तो उसे मौलिक कर्तव्यों सम्बन्धी शपथ लेनी पड़ती है। समाजवादी देश कर्तव्यों पर अधिक बल देते है जबकि उदारवादी देश अधिकारों पर अधिक बल देते है।

मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था। 42 वें अधिनियम के द्वारा संविधान में भाग 4 (क) और अनु0 51(क) जोड़ा गया और इसमें 10 मौलिक कर्तव्य रखे गये ये मौलिक कर्तव्य सम्बन्धी निर्णय स्वर्ण सिंह समिति की अध्यक्षता में लिए गए थे। ये पूर्व सोवियत संघ से लिए गये है |86 वें अधिनियम द्वारा 2002 एक और मौलिक कर्तव्य जुड़ जाने से अब इनकी संख्या 11 हो गयी है।

मौलिक कर्तव्य न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है अर्थात न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराएं जा सकते इसके बाबजूद व्यक्ति के लिए इसका पालन करना अनिवार्य है इसका उल्लंघन होने पर संसद कानून बनाकर दण्ड निर्धारित कर सकती है।

नयी राष्ट्रीय ध्वज आचार संहिता 2002 के द्वारा यह नियम निर्धारित कर दिया गया है कि 15 अगस्त व 26 जनवरी के अलावा अन्य दिवस पर भी राष्ट्रीय ध्वज फहराया जा सकता है लेकिन वह जमीन और पानी से छुता हुआ नहीं लगना चाहिए।

अनु 51(क) में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा।

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शो संस्थाओं राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

2. स्वतन्त्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

3. भारत की प्रभुता एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसके अक्षुण्ण रखे।

4. देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान मातृत्व की भावना का निमार्ण करे जो धर्म भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध है।

6. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिक्षण करें।

7. प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत बन झील नदी और वन्य जीव है रक्षा करे और उसका सबर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।

8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नयी ऊचाइयों को छू ले।

11. यदि माता पिता या संरक्षक है छह वर्ष की आयु वाले अपने यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

अभ्यास प्रश्न

1.मूल संविधान में मूल अधिकारों की संख्या कितनी थी?

2.वर्तमान समय में मूल अधिकारों की संख्या कितनी है?

3.अनुच्छेद 3००(क) किसका प्रावधान करता है ?

4.मूल कर्तव्यों का संविधान में प्रावधान किसकी सिफारिस से किया गया है?

5.मूल कर्तव्यों की संख्या कितनी है ?

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है। कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है । इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा जा सकती है।

किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

चूकिं किसी का अधिकार अन्य का कर्त्तव्य होता है अर्थात अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के पहलु है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्त्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

6.6 शब्दावली

मौलिक अधिकार - वे अधिकार जो व्यक्तित्व के विकास में मूलभूत होते है। जिनके बिना विकास नहीं हेा सकता।

निवारक निरोध - भविष्य में अपराध करने की आशंका से किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी जिससे अपराध को रोका जा सके निवारक निरोध कहलाता है।

6.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. 7 , 2. 6 , 3.संपत्ति का कानूनी अधिकार , 4.स्वर्ण सिंह समिति के सिफारिस के आधार पर , 5. 11

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम॰ (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली

2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी॰एच॰ आई॰ लार्निंग, नई दिल्ली।

3. बसु, डी॰डी॰ (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

6.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान

2. जैन, डॉ॰ पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

3. सिंह, डॉ॰ वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.मौलिक अधिकार से आप क्या समझते हैं? स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या कीजिये |

2.संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार की विवेचना कीजिये |

इकाई 7 : राज्य के नीति निर्देशक तत्व

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 नीति निर्देशक तत्व
7.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर
7.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व
7.4 सारांश
7.5 शब्दावली
7.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई 6 के अध्ययन के उपरान्त हम जान सके हैं कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा की जा सकती है।

किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

चूकिं किसी का अधिकार अन्य का कर्त्तव्य होता है अर्थात अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के पहलु है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्त्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

इस इकाई 7 में हम संविधान के भाग 4 में उपबंधित राज्य के नीति निदेशक तत्वों का विस्तार से अध्ययन करेंगे | इसमें हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से इन निदेशक तत्वों के माध्यम से एक कल्याण कारी राज्य की स्थापना का प्रयास किया है | यद्यपि ये निदेशक तत्व न्यायलय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं | लेकिन हम यहाँ स्पष्ट कर दें कि देश में संसदीय लोकतंत्र अपनाया गया है जिसमें सरकार की जनता के प्रति निरंतर उत्तरदायित्व होता है |ऐसी स्थिति में इन निदेशक तत्वों कि अनदेखी कोई भी सरकार नहीं कर सकती है | इन्ही पक्षों का हम अध्ययन हम इकाई के अंतर्गत करेंगे |

7.2 उद्देश्य:-

1.इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेगें कि नीति निदेशक तत्वों को क्यों संविधान में उपबन्ध किया।

2.इसके अध्ययन से हम जान सकेगें कि किन2 निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन हुआ उसके परिणाम क्या रहें

3.इसके अध्ययन से हम जान सकेगें कि इसमें कल्याणकरी राज्य की अभिव्यक्ति होती है।

4.हम जान सकेगें कि मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्वों में क्या सम्बन्ध है।

7.3 नीति निर्देशक तत्व

राज्य की नीतियां क्या होनी चाहिए और कैसी होनी चाहिए इसी को बताने वाले दूसरे तत्व का नाम नीति निर्देशक तत्व है अर्थात नीति निर्देशक तत्व के आदर्श है जिनके आधार पर राज्य अपनी नीतियां तय करते है नीति निर्देशक तत्व का उद्देश्य भारत में सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है।

संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व को संविधान की आत्मा के रूप में देखा था मौलिक अधिकारों का उद्देश्य एक स्वतन्त्र एवं समता मूलक समाज की स्थापना करना है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य व्यक्ति के आर्थिक जीवन में मौलिक परिवर्तन लाना है तथा ऐसी वाह्य परिस्थितियों का सृजन कर सके। मौलिक अधिकार एक साधन है और नीति निदेर्शक तत्व एक लक्ष्य।

भारतीय संविधान के भाग-4 में अनु036 से लेकर अनु0 51 तक में नीति निर्देशक तत्वों का व्यापक प्रावधान किया गया है। अनु0 36 व 37 नीति निर्देशक तत्व की प्रकृति बताते है। अनु0 38 से लेकर अनु0 51 तक में नीति निर्देशक तत्व का उल्लेख है अर्थात मूल संविधान में इसका उल्लेख कुल 14 अनु0 में था। 42 वें अधिनियम द्वारा अनु0 39(क) अनु 43 (क) और 48 (क) जुड़ जाने से अब कुल 17 अनुच्छेद हो गया है। संविधान की प्रस्तावना में निहित आदर्शो अर्थात सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय को इसके द्वारा प्रत्यक्ष एवं साकार रुप से प्राप्त किया जा सकता है।

नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है। अर्थात ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते। इसे लागू करना देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों पर निर्भर है जैसे देश में भौतिक संसाधन बढ़ते जाएगें राज्य उसे अपनी नीति का हिस्सा बनाता जाएगा। नीति निर्देशक तत्वों को पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया जा सकता है।

संविधान निमात्री सभा में नीति निर्देशक तत्व पर बहस के दौरान इसकी आलोचना करते हुए कुछ लोगों ने इसे धार्मिक उपदेश या नैतिक शिक्षा बताया। T. कृष्णमाचारी ने इसे सच्ची भावनाओं का कूड़ादान बताया K.T. शाह के अनुसार नीति निर्देशक तत्व एक ऐसे चेक की भाँति है जिसका भुकतान बैंक की सुविधा पर निर्भर है।

डॉ0 अम्बेडकर ने उपर्युक्त आलोचनाओं का उत्तर देते हुए कहा कि भले नीति निर्देशक तत्वों के पीछे न्यायालय की शक्ति नहीं है लेकिन इसके पीछे सबसे बड़ी शक्ति जनमत की है। और राज्य का यह कर्तव्य होगा कि अपनी अधिकाधिक नीतियों इन्हीं तत्वों के आधार पर बनाय संविधान लागू

होने से लेकर आज तक सरकार ने इसे हर सम्भव से लागू कराने का प्रयास किया है इसके बावजूद अधिकांश नीति निर्देशक तत्व की उपेक्षा हुई है।

नोट - नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक आदेश है जो कि राज्य को कुछ कार्य करने का आदेश देते है।

अनुच्छेद 36 इसमें राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है और कहा गया है कि यहाँ राज्य शब्द का वही अर्थ है जो भाग 3 में है।

अनुच्छेद 37 यद्यपि नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है इसके बावजूद वे देश के शासन में मूलभूत है और राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी अधिकाधिक नीतियाँ इन्ही तत्वों के आधार पर बनाए।

उपर्युक्त बातों से निम्न 2 अर्थ निकलता है-

1.ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते।

2.यहां कर्तव्य इच्छा का नहीं बल्कि अनिवार्यता का प्रतीक है।

अनुच्छेद 38 इसका उद्देश्य भारत में सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है इसमें लोककल्याणकारी राज्य का विचार निहित है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनुच्छेद 38 (1) राज्य लोककल्याण की अभिवृद्धि के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाएगा जिसमें देश के सभी नागरिकों के सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय सुनिश्चित हो सके।

अनुच्छेद 38(2) राज्य सामान्यतः आय की असमानता को कम करने विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले तथा विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगे हुए वर्गो व समूहों के बीच प्रतिष्ठा सुविधाओं व अवसर की असमानता को भी कम करने का प्रयास करेगी।

इसे 44 वें अधिनियम द्वारा संविधान में जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य भारत में समाजवाद लाना है इस पर जय प्रकाश नारायण का पूर्ण प्रभाव है।

अनुच्छेद 39 इसके द्वारा भारत में आर्थिक लोकतन्त्र है कि राज्य अपनी आर्थिक नीतियों का निर्धारण निम्न प्रकार से करेगा।

(क) पुरूषों और स्त्रियों अर्थात सभी कर्मकारों को अपनी जीविका प्राप्त करने का पर्याप्त साधन मिल सके।

(ख) देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार से बंटा होना चाहिए कि वह समुदाय के पर्याप्त हित का साधन बन सके।

(ग) देश की आर्थिक नीतियों का संचालन इस प्रकार से होना चाहिए कि उसका एक स्थान पर अहितकारी संकेन्द्र न होने पाए।

(घ) पुरुषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन ,

(ङ) कर्मकारों के स्वास्थ व शक्ति तथा सुकुमार बालकों की अवस्था का दुरूपयोग न होने पाए तथा राज्य कोई ऐसी परिस्थिति न पैदा करे जिससे विवश होकर उन्हें किसी ऐसे रोजगार में जाना पड़े जो कि उनके आयु एवं शक्ति दोनो के विपरीत हो।

(च) सुकुमार बालकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए गरिमामय वातावरण का सृजन किया जाए तथा सुकुमार बालकों एवं अल्पवय व्यक्तियों की आर्थिक एवं नैतिक परित्याग से रक्षा की जाए।

अनुच्छेद 39(क) इसमें समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किया गया है। दूसरे शब्दों में राज्य का विधिक तन्त्र इस प्रकार से कार्य करेगा कि देश के सभी नागरिकों को समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त हो सके। किसी को भी आर्थिक अयोग्यता या अन्य कारण से इससे वंचित न होना पड़े।

अनुच्छेद 40 राज्य पंचायतों का संगठन करेगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियां एवं प्राधिकार देगा जिसमें वे एक स्वायत्व शासन की इकाई की दिशा में विकसित हो सके।

इस पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव है इसे 73 वें व 74 वें अधिनियम के द्वारा संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दिया गया लेकिन अभी भी पंचायतें स्वतंत्र संस्था के रूप में विकसित नहीं हो सकीं है वे आर्थिक रूप से विपन्न है पंचायते भी राज नीति का अखाड़ा बनती जा रहीं है अज्ञानता और अशिक्षा पंचायती राज के विकास में बाधक है।

अनुच्छेद 41 राज्य विकास एवं क्षमता की सीमा भीतर कुछ मामलों में काम पाने शिक्षा पाने बेकारी अंगहानि तथा इसी प्रकार की अन्य अयोग्यता होने पर राज्य उसे दूर करने का प्रयास करेगा।

इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में डवा आगनबाड़ी, प्रौढ़ शिक्षा, सर्वशिक्षा अभियान आपरेशन बोर्ड योजना राष्ट्रीय एड्स नीति विकलांगों को छात्रवृति एवं रिक्शा तथा वृद्धावस्था पेंशन जैसे कार्यक्रम चलाए।

अनुच्छेद 42 राज्य काम की न्यायसंगत तथा मान्योचित दशा में सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा प्रसूति सहायता उपलब्ध करायेगा।

अनुच्छेद 43 राज्य उद्योगों में लगे हुए कर्मचारियों के उचित वेतन शिष्ट जीवन स्तर काम के घन्टे आदि को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा तथा इसी में कहा गया है। राज्य ग्रामीण कुटीर उद्योगों को सहकारी एवं व्यक्ति प्रोत्साहन भी देगा।

अनुच्छेद 43 (क) उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मचारियों के भाग लेने व्यवस्था का प्रावधान। इसे 42 वें अधिनियम के द्वारा संविधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 44 इसमें कहा गया है कि भारत के सभी नागरिकों के लिए एक समान आचार संहिता होनी चाहिए। धर्म निरपेक्षता को व्यवहारिक रूप देने के लिए इसे संविधान में शामिल किया गया है लेकिन राजनीतिक कारणों से इसे अभी तक लागू नहीं किया जा सका। हिन्दूओं के लिए हिन्दू विवाह उत्तराधिकार अधिनियम व दहेज निषेध जैसे कानून बने है लेकिन मुसलमानों के लिए ऐसा कोई कानून नही है साहबानों के केस में न्यायालय ने इसे लागू कराने की बात कही थी राजीव गांधी ने 1986 में ऐसा कानून बनवाया भी था लेकिन मुसलमानों के व्यापक विरोध के कारण सरकार ने इसे समाप्त कर दिया।

अनुच्छेद 45 संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा

86वें अधिनियम के द्वारा इसे मौलिक अधिकार बनाकर इसे 21(क) में रख दिया गया है और इसके स्थान पर अनु0 45(क) जोड़ा गया है।

अनुच्छेद 45(क) राज्य 6 वर्ष से कम आयु के बच्चो के स्वास्थ एवं शिक्षा पर विशेष ध्यान देगा।

अनुच्छेद 46 राज्य के कमजोर वर्गो विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनूसूचित जनजातियों के आर्थिक एवं शैक्षिक हितों को बढ़ावा देगा तथा समाज के शोषण और अन्याय से उनकी रक्षा करेगा।

इस पर डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का प्रभाव है इसे क्रियान्वित करने के लिए SC व ST को निःशुल्क कोचिंग संस्थान छात्रवृत्ति प्रतियोगी परिक्षाओं के फार्म में भारी छूट तथा हरिजन एक्ट जैसे कानून का प्रावधान किया गया है।

अनुच्छेद 47 राज्य लोगों के पोषाहार स्तर व जीवन स्तर को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा औषधीय प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाली औषधि को छोड़कर शेष मादक एवं पेय पदार्थो पर प्रतिबन्ध लगायेगा। इसे राजनीतिक कारणों से अभी तक लागू नहीं किया जा सका।

अनुच्छेद 48 राज्य कृषि और पशुपालन का आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके से बढ़ावा देगा तथा गायों बछड़ों दुधारू पशुओं वाहक पशुओं के नस्लों को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा इनके बध आदि पर प्रतिबन्ध लगायेगा।

इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में हरित क्रांन्ति पीली क्रांन्ति, नीली क्रान्ति राष्ट्रीय कृषि नीति जैव प्रौद्योगिकी नीति सुधार कार्यक्रम, कृषि विश्व विद्यालयों की स्थापना तथा नये किस्म के बीज एवं खाद्य का निमार्ण आदि हुआ। कई राज्यों ने गोवध आदि पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कानून भी बनाए।

अनुच्छेद 48(क) राज्य पर्यावरण का संरक्षण एवं संबर्धन करेगा। तथा वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करेगा। इसको क्रियान्वित करने के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम वन्य जीव संरक्षण अधिनियम तथा राष्ट्रीय वन्य नीति जैसे कानून बनाये गए।

अनुच्छेद 49 राज्य संसद द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व के स्मारक कलात्मक वस्तुओं और ऐतिहासिक घरोहरों की लुन्ठन विरूपण एवं विकृति से रक्षा करेगा।

अनुच्छेद 50 इसमें कहा गया है कि कार्यपालिका व न्यायपालिका के बीच कार्यो में पृथक्करण होगा। आज भी इसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका प्रायः यह देखा जाता है कि कार्यपालिका के बहुत से ऐसे कार्य है जो न्यायपालिका करती नजर और आती है और न्यायपालिका के कार्य कार्यपालिका करती नजर आती है।

अनुच्छेद 51 राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रत्यन करेगा। आपसी विवादों को द्विपक्षीय वार्ता से निपटाएगा तथा अन्तराष्ट्रीय संन्धि कानूनों एवं वहृयताओं का पालन करेगा।

इस पर पं0 नेहरू का प्रभाव है इसमें भारत की विदेश नीति का उल्लेख है इसे लागू करने के लिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी पंचशील समझौता किया संयुक्त राष्ट्र संघ में आस्था व्यक्त किया। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध किया और निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया।

7.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर

1.मौलिक अधिकार राज्य के लिए नकारात्मक आदेश है अर्थात ये राज्य के कुछ कार्यो पर प्रतिबन्ध लगाते है जबकि नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक है अर्थात राज्य को कुछ कार्य करने के लिए आदेश देते है।

2.मौलिक अधिकार वाद योग्य है अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व वाद योग्य नहीं है अर्थात यह न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है।

3.मौलिक अधिकार निरंकुश व सीमित है इन पर आपात काल में प्रतिबन्ध लगया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व निरकुश और असीमित है इन पर कभी प्रतिबन्ध लगाया नहीं जा सकता।

4.मौलिक अधिकारों का स्वरूप केवल राष्ट्रीय है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का स्वरूप राष्ट्रीय के साथ अन्तराष्ट्रीय भी है।

7.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व

मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक तत्व के बीच विवाद सर्वप्रथम चम्पाकम दोराई राजन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सन 1951 में आया इस मामले में न्यायालय ने कहा मौलिक अधिकार वाद योग्य है अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निदेशक तत्वों के साथ ऐसी कोई बात नहीं है इसलिए मौलिक अधिकार को नीति निर्देशक तत्व पर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। लगभग यही बात केशव सिंह बनाम विहार राज्य व सज्जन कुमार बनाम राजस्थान राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा।

गोलकानाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा कि अनु0 368 के अन्तर्गत संसद को मौलिक अधिकारों में संसोधन करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। यह निर्णय 9 न्यायाधीशों की संविधान ने 5:4 के बहुमत ये दिया था।

1971 में संसद ने 24 वां 25वां अधिनियम पारित किया। 24 अधिनियम में यह प्रावधान किया गया कि संसद को अनु0 368 के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों संहित संविधान के किसी भी भाग में संसोधन करने की असीमित शक्ति प्राप्त है और 25 वें अधिनियम द्वारा संविधान में अनु0 31 (ग) जोड़ते हुए यह प्रावधान कर दिया गया कि अनु0 39 (b) और 39(c) को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्राप्त है।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 24वें व 25 वे अधिनियम पर सुनवायी करते हुए दोनों को वैध ठहराया लेकिन 24 वें के सन्दर्भ में कहा कि वह संविधान के मूल ढ़ाचे को नष्ट न करता हो पहली बार इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल ढ़ाचे शब्द का

प्रतिवादन किया संविधान का मूल ढ़ाचा का आधार न्यायिक र्निवचन है। केशवानन्द भारती के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में अब तक की सबसे बड़ी संविधान पीठ 13 न्यायाधीशों की बैठी थी जिसमें 7:6 के अनुपात से निर्णय हुआ।

1976 में 42 वां अधिनियम पारित किया गया जिसमें कहा गया कि अनु0 368 के अन्तर्गत संसोधन का असीमित अधिकार है और इसकी संवैधानिक वैधता को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती तथा ये कहा कि सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

42 वें अधिनियम पर सुनवायी करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ 1980 के मामले मे 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें कहा गया था कि इसकी वैधता को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायिक पुनरावलोकन संविधान का मूल ढ़ाँचा है और 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की गयी थी। 25 वे अधिनियम को वैध ठहराते हुए केवल अनु0 39(b) और अनु0 39(c) को ही मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता बताया।

अभ्यास प्रश्न

1.राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रत्यन करेगा। यह प्रावधान किस अनुच्छेद में है ?

2.भारतीय संविधान के किस भाग में नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया गया है ?

3.सभी कर्मकारों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का उल्लेख है किस अनुच्छेद में है ?

4.अनुच्छेद 39 समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किस अनुच्छेद में किया गया है ?

5.पंचायतों के गठन का निर्देश किस अनुच्छेद में किया गया है ?

7.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन में हमने यह पाया है कि किस प्रकार से किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के प्रावधान के साथ नीति निदेशक तत्व का प्रावधान किया है | जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके है हैं कि यद्यपि यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है अर्थात सरकार के द्वारा

इसके अनुपालन में कार्य न करने पर हम इसको लागू करवाने के लिए न्यायलय में नहीं जा सकते है | लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है हमारे देश मेब संसदीय शाशन प्रणाली अपनाई गई है जिसमें सरकार निरंतर जनता के प्रति उत्तरदाई होती है | आज तो मीडिया की अत्यंत जागरूकता के फलस्वरूप सरकार की प्रत्येक गतिविधि की खबर जनता को तुरंत होती रहती है | और नियतकालिक चुनाव में पुनः जनता के जनता के समक्ष जाना होता है समर्थन के लिए | इसलिए जनता की भलाई और कल्याण के लिए जो प्रावधान किये गए है उनकी अनदेखी सरकार नहीं करी सकती है | जैसा कि पंचायतो का गठन और महिलाओं ओर बच्चो तथा समाज के पिक्षडे वर्गों के लिए भी नीतिया बनाकर उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है | इस प्रकार से ये नीति निर्देशक तत्व यद्यपि नयायालय द्वारा तो प्रवर्तनीय नहीं है परन्तु शासन का जनता के प्रति उत्तरदायित्व के सिद्धांत के कारण इनके क्रियान्वयन का दबाव निरंतर शासन पर बना रहता है जिसकी वह अनदेखी नहीं कर सकते हैं |

7.5 शब्दावली

कल्याणकारी राज्य - जिस राज्य के द्वारा समाज के कमजोर वर्ग को वे सुविधांए प्रदान की जाती है, जिन्हें समक्ष लोग स्वयं प्राप्त करते है।

सामाजिक न्याय - समाज के सबसे निचले पायदान पर रहने वाले को प्राथमिकता के आधार पर बिना की जाति धर्म के भेद भाव किये आवश्यक सेवाए प्रदान करना है।

7.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.अनुच्छेद 51, 2. भाग-4 , 3. अनुच्छेद 39(e) 4.अनुच्छेद 39 5.अनुच्छेद 40

7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम॰ (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली

2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी॰एच॰ आई॰ लार्निंग, नई दिल्ली।

3. बसु, डी॰डी॰ (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

4.मंगलानी,डॉ.रूपा – भारतीय शासन और राजनीति

7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान

2. जैन, डॉ॰ पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

3. सिंह, डॉ॰ वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली

7.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.नीति निदेशक तत्व राज्य को कल्याण कारी राज्य बनाने लिए किया गया भागीरथ प्रयास है | स्पष्ट कीजिये |

2. नीति निदेशक तत्व और मौलिक अधिकारों में अंतर करते हुए , भारत में इनके महत्व की विवेचना कीजिये|

इकाई 8 सरकार के अंग: विधायिका, कार्यपालिका,न्यायपालिका

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 व्यवस्थापिका: संगठन एवं कार्य

8.4 व्यवस्थापिका के कार्य

8.5 कार्यपालिका का अर्थ

8.6 कार्यपालिका के कार्य

8.7 कार्यपालिका के प्रकार

8.8 कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के मध्य सम्बन्ध

8.9 न्यायपालिका के कार्य

8.10 न्यायपालिका की स्वतंत्रता

8.11 सारांश

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.14 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.15 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

सरकार राज्य का एक प्रमुख तत्त्व है अर्थात हम कह सकते है कि राज्य की कल्पना सरकार के बिना नहीं की जा सकती। सरकार के कार्यों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जहां तक व्यवस्थापिका का संबंध है तो इसका प्रमुख कार्य देश के लिए कानूनों का निर्माण करना होता है जिसके आधार पर शासन व्यवस्था का संचालन किया जाता है। जहां तक कार्यपालिका का संबंध है तो इसका प्रमुख कार्य देश के लिए कानूनों कोलागू करना होता है। कार्यपालिका शासन का वह अंग है जो व्यवस्थापिका द्वारा बनाये गये कानूनों को लागू करती है। ठीक इसी प्रकार न्यायपालिका का प्रमुख कार्य देश के लिए विधियों की व्याख्या करना एवं उसके उल्लघन करने वालों को दण्डित करना है।

8.2 उद्देश्य

1. व्यवस्थापिका के संगठन एवं कार्यों के बारे में विस्तार से अध्ययन सामग्री प्राप्त कर सकते हैं ।
2. कार्यपालिका के संगठन एवं कार्यों के बारे में विस्तार से अध्ययन सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।
3. कार्यपालिका व्यवस्थापिका संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन करना है।
4. न्यायपालिका के संगठन एवं कार्यों के बारे में विस्तार से अध्ययन सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।

8.3 व्यवस्थापिका: संगठन एवं कार्य

सरकार के तीन अंग हैं-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। कार्यों की प्रकृति एवं सार्वजनिक उत्तरदायित्व के दृष्टिकोण से व्यवस्थापिका तीनों अंगों में सर्वोच्च है। व्यवस्थापिका का कार्य है-विधिनिर्माण करना। तुलनात्मक राजनीति की आधुनिक शब्दावली के अंतर्गत व्यवस्थापिका के स्थान पर नियम-निर्माण विभाग का प्रयोग किया जाता है।

व्यवस्थापिका के संगठन के कई आधार है। अलग-अलग देश मेंव्यवस्थापिका के संगठन के लिए अलग-अलग आधार अपनाया जाता है। कुछ देशों में व्यवस्थापिका का संगठन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है तथा कुछ देशों में व्यवस्थापिका का संगठन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। आमतौर से द्वितीय सदन के संगठन का आधार अप्रत्यक्ष होता है। व्यवस्थापिका के

संगठन का विश्लेषण करने के क्रम में एकसदनात्मक एवं द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का उल्लेख करना आवश्यक है।

एकसदनात्मक व्यवस्थापिका

व्यवस्थापिका में एक सदन हो उसे एकसदनात्मक व्यवस्थापिका कहा जाता है। अनेक विद्वानों का मत है कि एकसदनात्मक व्यवस्थापिका ही लोकतंत्र के लिए उपयुक्त है। फ्रांस के विद्वान विधिवेत्ता ऐबे सिएज के कथनानुसार द्वितीय सदन एक अनावश्यक सदन है। उसने द्वितीय सदन की अनुपयोगिता की चर्चा करते हुए कहा है, "द्वितीय सदन यदि प्रथम सदन से सहमति व्यक्त करता है तो यह अनावश्यक है और यदि असहमति व्यक्त करता है तो शैतानी करता है" सिएज ने यह भी कहा है कि कानून लोगों की इच्छा का फल है। लोग एक ही समय में एक ही विषय पर दो भिन्न इच्छाएँ नहीं कर सकते।

फ्रांस और इंगलैंड में क्रमशः 1891 तथा 1651 ई0 में एकसदनात्मक व्यवस्थापिका अपनाने का प्रयोग किया गया था, परंतु कई कारणों से वह प्रयोग सफल नहीं हो सका।

एकसदनात्मक व्यवस्थापिका की उपयोगिता के संबंध में यह कहा जाता है कि यह लोकतंत्र के अनुकूल है तथा इसके अंतर्गत दो सदनों के बीच पारस्परिक संघर्ष या तनाव का वातावरण नहीं रहता। आज अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता है कि कई दृष्टियों से द्विसदनात्मक व्यवस्था ज्यादा उपयुक्त और उपयोगी है। आज यद्यपि चीन, यूनान, इस्टोनिया, युगोस्लाविया तथा कुछ अन्य देशों में एकसदनात्मक व्यवस्थापिका बनी हुई है, तथापि अधिकांश देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका को ही स्थान दिया गया है।

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका

दो सदनों वाली व्यवस्थापिका को द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका कहा जाता है। आज विश्व के अधिंकाश देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का प्रावधान किया गया है। कई विद्वान यह मानते हैं कि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका इंगलैंड की देन है। विलोबी ने कहा है, "यदि ब्रिटिश संसद द्विसदनात्मक न होती तो शायद विश्व के अन्य विधानमंडल भी द्विसदनात्मक नहीं होते।" पोलॉस्की नामक विद्वान ने कहा है, "यह केवल ऐतिहासिक संयोग की बात है कि इंगलैंड की व्यवस्थापिका द्विसदनात्मक थी और अन्य देशों ने उसी का अनुसरण किया।"

जिन देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की व्यवस्था है, वहाँ एक सदन को प्रथम सदन तथा दूसरे को द्वितीय सदन कहा जाता है। प्राचीन काल में द्वितीय सदन को उच्च सदन कहा जाता था। प्रथम सदन लोकप्रिय सदन होता है तथा द्वितीय सदन विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन है।

इंगलैंड की लार्ड्स सभा वहाँ के उच्च घराने के लॉर्डो एवं पियरों का प्रतिनिधित्व करती है। संघात्मक शासन-व्यवस्था के अंतर्गत द्वितीय सदन राज्यों या संघ की ईकाईयों का प्रतिनिधित्व करता है।

उच्च सदन या द्वितीय सदन की रचना में भी भिन्नता पाई जाती है। इंगलैंड में लॉर्ड्स सभा के संगठन का आधार वंश परंपरानुगत सिद्धांत है, अमेरिका, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, पॉलैंड द्वितीय सदन प्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित होता है। भारत में द्वितीय सदन अप्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित होता है तथा इसके कुछ सदस्य मनोनीत भी होते है।

8.4 व्यवस्थापिका के कार्य

व्यवस्थापिका का गठन मूलतः विधिनिर्माण के लिए होता है, परंतु विधिनिर्माण के अतिरिक्त व्यवस्थापिका के अनेक कार्य हैं तथा इसकी शक्तियाँ भी व्यापक हैं। आधुनिक युग में राज्य का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है, जहाँ व्यवस्थापिक का प्रभाव या संबंध नहीं हो। व्यवस्थापिका की शक्तियों एवं कृत्यों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जाता है-

1. विधिनिर्माण - व्यवस्थापिका का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विधिनिर्माण है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विधायिका का संगठन विधिनिर्माण के लिए होता है। जनता की इच्छा को कानून के रूप में अभिव्यक्ति देने के लिए व्यवस्थापिका के अंतर्गत जनता के प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। कुछ बातों को छोड़कर कानून बनाने की प्रक्रिया सर्वत्र एक प्रकार की रहती है। अध्यक्षात्मक एवं संसदीय प्रणलियों में विधिनिर्माण की प्रक्रिया में भिन्नता पाई जाती है।
2. कार्यपालिका पर नियंत्रण- व्यवस्थापिका का दूसरा प्रमुख कार्य कार्यपालिका पर नियंत्रण है। संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत व्यवस्थापिका निम्नलिखित ढंग से कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है-

   (क)मंत्रिपरिषद के सदस्य सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

   (ख)व्यवस्थापिका सरकार की आलोचना कर सकती है, सरकारी नीति पर वाद-विवाद कर सकती है तथा सरकार के विरूद्ध निंदा का प्रस्ताव पारित कर सकती है।

   (ग)व्यवस्थापिका के सदस्य मंत्रियों से उनके विभागों के बारे में आवश्यक प्रश्न पूछ सकते हैं।

   (घ)व्यवस्थापिका के अंतर्गत राज्याध्यक्ष के अभिभाषण पर वाद-विवाद कर भी वह कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(ङ) बजट में कटौती का प्रस्ताव पारित कर भी व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(च)स्थगन प्रस्ताव के जरिए भी व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

3. वित्तीय कार्य- कार्यपालिका वित्तीय लेन-देन एवं संचालनों के लिए उत्तरदायी है, परंतु अंतिम रूप से व्यवस्थापिका कार्यपालिका के वित्तीय संचालनों पर नियंत्रण रखती है। हर देश में प्रतिवर्ष कार्यपालिका बजट के रूप में अपने आय-व्यय का विवरण व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुत करती है। व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत होने के बाद ही कार्यपालिका टैक्स लगा सकती है तथा विभिन्न मदों पर व्यय कर सकती है। व्यवस्थापिका को बजट में कटौती करने का अधिकार प्राप्त है। अनुदान की माँगे, विनियोग विधेयक आदि पर व्यवस्थापिका की स्वीकृती आवश्यक है। संसदीय शासन-प्रणाली तथा अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली दोनों के अंतर्गत व्यवस्थापिका का वित्तीय स्थिति पर नियंत्रण रहता है। इंगलैंड की सरकारी वित्तीय स्थिति के संबंध में यह कहा जाता है कि सरकार धन की माँग करती है, कॉमन्स सभा स्वीकार करती है तथा लार्ड्स सभा उसका अनुसमर्थन करती है। यही स्थिति प्रायः सभी देशों में है।

4. विमर्शात्मक कार्य- व्यवस्थापिका एक विमर्शात्मक निकाय के रूप में भी काम करती है। व्यवस्थापिका के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए सभी सरकारी प्रस्तावों पर विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद किया जाता है। व्यवस्थापिका सरकारी नीतियों पर भी वाद-विवाद करती है।

5. न्यायिक कार्य- कई स्थितियों में व्यवस्थापिका को न्यायिक कार्य भी करने पड़ते हैं। अमेरिका में प्रतिनिधि सभा द्वारा राष्ट्रपति के विरूद्ध लगाए गए महाभियोग के प्रस्ताव के संबंध में द्वितीय सदन सिनेट न्यायालय की तरह सुनवाई करती है। ब्रिटेन में लार्ड्स सभा देश के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में भी काम करती है, परंतु इस स्थिति में केवल कानूनी लॉर्ड ही भाग लेते हैं। स्विट्जरलैंड में राष्ट्रीय सभा संविधान की व्याख्या का कार्य करती है, इसलिए इसे न्यायिक कार्य की संज्ञा दी गई है।

6. विविध कार्य-उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त व्यवस्थापिका को और भी कई प्रकार के कार्यों का संपादन करना पड़ता है। संविधान में संशोधन, जनता की शिकायतों की सुनवाई तथा निवारण, राज्याध्यक्षों का चुनाव आदि भी व्यवस्थापिका के मुख्य कार्य है। स्विट्जरलैंड की राष्ट्रीय सभा मंत्रिपरिषद के सदस्यों, न्यायाधीशों तथा प्रधान सेनापति की नियुक्ति करती है। व्यवस्थापिका को नियुक्ति के साथ-साथ पदच्युति का भी अधिकार है। भारत में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने का प्रस्ताव व्यवस्थापिका द्वारा ही पारित होता है। अमेरिका में कांग्रेस ही राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग पारित कर सकती है। ब्रिटेन में कॉमेन्स सभा मंत्रिपरिषद को अविश्वास के प्रस्ताव पर अपदस्थ कर सकती है।

8.5 कार्यपालिका का अर्थ

कार्यपालिका सरकार का वह अंग है, जिसका कार्य व्यवस्थापिका द्वारा पारित विधेयकों का कार्यान्वयन करना है। विधियों को लागू करने वाली शक्ति को कार्यपालिका कहा जाता है। कार्यपालिका का दो अर्थ में प्रयोग किया जाता है: व्यापक अर्थ में तथा संकुचित अर्थ में। व्यापक अर्थ में कार्यपालिका के अंतर्गत वे सभी कर्मचारी आते हैं, जिनका संबंध प्रशासन से होता है। संकुचित अर्थ में कार्यपालिका के अंतर्गत वे सभी कर्मचारी आते है, जिनका संबंध नीति-निर्माण तथा उसके कार्यन्वयन से है। अमेरिका में राष्ट्रपति तथा उसके सचिव उसके अंतर्गत आते हैं। पलेम्बरा ने सरकार, कार्यपालिका और नौकरशाही में अंतर बरता है। मैक्रीडिस ने कहा है कि राजनीतिक कार्यपालिका राजनीतिक समाज के शासन के लिए औपचारिक उत्तरदायित्व निभानेवाली संस्थागत व्यवस्था है। आधुनिक युग में राजनीति विज्ञान के अंतर्गत कार्यपालिका में कार्यपालिका के प्रधान तथा मंत्रिमंडल को लिया जाता है। असैनिक सेवा तथा इस स्तर के कर्मचारी कार्यपालिका के अंतर्गत नहीं आते हैं।

8.6 कार्यपालिका के कार्य

प्राचीन काल में जब राज्य का स्वरूप सैनिक राज्य का था तब कार्यपालिका के कार्य समिति थे, परंतु आधुनिक राज्य में कार्यपालिका के कार्यों के क्षेत्र एवं प्रकृति में मौलिक अंतर हुआ है। साथ-ही-साथ उसके कार्यों में वृद्धि भी हुई है। आधुनिक राज्य में कार्यपालिका के निम्नलिखित मुख्य कार्य हैं-

प्रशासकीय कार्य - कार्यपालिका के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रशासकीय कार्य हैं। कार्यपालिका अपने देश की सीमा के अंतर्गत विधियों को लागू करती है, प्रशासन की विभिन्न एजेंसियों को गठित करती है तथा उनके लिए पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है। कार्यपालिका प्रशासन के विभिन्न विभागों एवं एजेंसियों के बीच सांमजस्य स्थापित करती है। संक्षेप में, आंतरिक दृष्टि से कार्यपालिका कानूनों को लागू करने, प्रशासन का निर्देशन, निरीक्षण एवं नियंत्रण करने तथा प्रशासन के विभिन्न विभागों एंव एजेंसियों के बीच ताल-मेल रखने तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करती है।

कूटनीतिक कार्य - कार्यपालिका कूटनीतिक कार्यों का भी संपादन करती है। इसके अंतर्गत विदेशी मामले भी आ जाते हैं। आधुनिक युग में विदेशी क्षेत्रों में कार्यपालिका के कार्य बढ़ गए हैं। वह विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों एवं राजनयिकों की नियुक्ति करती है तथा विदेशों से आने वाले राजदूतों का प्रमाणपत्र ग्रहण करती है। विदेशों के साथ संधि एवं समझौते करने तथा उन्हें लागू करने

में कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। संधियों एवं समझौते से विदेशों के साथ आर्थिक, राजनीतिक, व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंध स्थापित करने की जिम्मेदारी भी कार्यपालिका की ही है।

सैनिक कार्य - आधुनिक युग में मुख्य कार्यपालक को ही सेना का प्रधान कहा जाता है। भारत का राष्ट्रपति सेना के तीनों अंगों का सर्वोच्च सेनापति है। कार्यपालिका ही सेना के प्रधानों की नियुक्ति करती है तथा उसे युद्ध या अन्य प्रयोजनों के लिए आदेश देती है। युद्ध, युद्धविराम की घोषणा करना भी कार्यपालिका के ही कार्य हैं।

विधायिनी कार्य - कार्यपालिका विधायिनी कार्यों का भी संपादन करती है। संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत तो विधिनिर्माण की वास्तविक जिम्मेदारी कार्यपालिका की होती है। विधेयकों को प्रस्तावित करने से लेकर उन्हें पारित करने की जिम्मेदारी कार्यपालिका की है। विधिनिर्माण में सहभागी होने के साथ-साथ कार्यपालिका अध्यादेश भी जारी करती है।

अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली में शक्तियों के पृथकरण के कारण कार्यपलिका सक्रिय रूप से विधि निर्माण की प्रक्रियाओं में तो भाग नहीं लेता, परंतु संदेश भेजने के अधिकार एवं निषेधाधिकार के कारण वह विधायन की प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

आधुनिक युग में प्रदत्त विधायन के कारण भी विधायिनी क्षेत्र में कार्यपालिका की भूमिका सक्रिय एवं महत्त्वपूर्ण हो गई है।

वित्तीय कार्य - देश की वित्तीय व्यवस्था के प्रबंध एवं संचालन की जिम्मेदारी कार्यपालिका की है। देश के आय-व्यय के लिए बजट बनाने तथा विधानमंडल के सामने उसे प्रस्तुत करने, विधायिका द्वारा स्वीकृत राजस्व की राशि को वसूलने, उनका आबंटन करने, तथा प्रशासन के संबंध में आवश्यक व्यय करने का अधिकार कार्यपालिका के हैं। कार्यपालिका नए टैक्स लगाने, पुराने टैक्सों में संशोधन करने या उठने का प्रस्ताव विधायिका के सम्मुख रखती है। कार्यपालिका देश की संचित निधि का संरक्षक होती है। विधायिका की स्वीकृति के अभाव में वह आकस्मिक निधि से राशि निकालकर भी व्यय कर सकती है।

न्यायिक कार्य - कार्यपालिका को न्यायिक कार्यों का भी संपादन करना पड़ता है। वह न्यायाधीशों की नियुक्ति करती है, न्यायालय द्वारा दंडित व्यक्तियों के दंड को कम कर सकती है, स्थगित कर सकती है तथा क्षमा प्रदान कर सकती है।

अन्य कार्य - कार्यपालिका को उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त कई अन्य प्रकार के कार्यों का भी संपादन करना पड़ता है। देश के आर्थिक एंव व्यापारिक विकास में भी कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। कार्यपालिका को संकटकालीन स्थितियों में कुछ विशेष प्रकार के कार्यों का संपादन करना पड़ता है। उस समय वह असामान्य शक्तियों का भी प्रयोग करती है। उदाहरण के लिए, भारत की कार्यपालिका को संकटकालीन स्थिति का मुकाबला करने के लिए संकटकालीन शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। फ्रांस में भी कार्यपालिका को आपातकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं।

राजनीतिक कार्य - आधुनिक युग में कार्यपालिका सांविधानिक कार्यों के अतिरिक्त कतिपय राजनीतिक कार्यों का भी संपादन करती है।

8.7 कार्यपालिका के प्रकार

आधुनिक युग में कार्यपालिका के कई प्रकार हैं। अलग-अलग राज्य में कार्यपालिका के अलग-अलग प्रकार हैं। आधुनिक कार्यपालिका के मुख्यतः निम्नलिखित रूप हैं-

(क) **राजनीतिक और स्थायी कार्यपालिका** - यों तो संकुचित दृष्टिकोण से कार्यपालिका के अंतर्गत असैनिक सेवा के सदस्य नहीं आते, फिर कार्यपालिका का वर्गीकरण राजनीतिक और स्थायी कार्यपालिका में किया जाता है। राजनीतिक कार्यपालिका वह कार्यपालिका है, जो निर्वाचित होती है तथा जो एक निश्चित अवधि के लिए अपने पद पर बनी रहती है। इसके विपरीत स्थायी कार्यपालिका वह कार्यपालिका है जो स्थायी है तथा जिसका निर्वाचन से कोई संबंध नहीं है। स्थायी कार्यपालिका राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ रहती है।

(ख)**नाममात्र की एवं वास्तविक कार्यपालिका** - जब कार्यपालिका केवल नाममात्र का प्रधान होती है, तब उसे नाममात्र की कार्यपालिका कहा जाता है। इसे सांविधानिक कार्यपालिका भी कहा जाता है। संसदीय शासन-प्रणाली में नाममात्र की तथा वास्तविक दोनों प्रकर की कार्यपालिका होती है। ब्रिटेन का सम्राटतथा भारत का राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका के उदाहरण हैं। ये दोनों अपने-अपने राज्य के मात्र सांविधानिक प्रधान हैं।

जब कार्यपालिका सांविधानिक दृष्टिकोण से प्रधान नहीं होते हुए भी यथार्थ में प्रधान होती है, तब उसे वास्तविक कार्यपालिका कहा जाता है। ब्रिटेन एवं भारत का मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका के उदाहरण हैं। अमेरिका का राष्ट्रपति तथा फ्रांस का राष्ट्रपति सांविधानिक एवं वास्तविक दोनों कार्यपालिका के मिश्रण हैं।

(ग) **एकल और बहुल कार्यपालिका** - जब कार्यपालिका की शक्तियाँ एक निश्चित व्यक्ति के हाथ में निहित होती हैं, तब उसे एकल कार्यपालिका कहा जाता है। इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा फ्रांस में एकल कार्यपालिका है।

जब कार्यपालिका की शक्तियाँ किसी एक व्यक्ति में निवास न कर कुछ व्यक्तियों के समूह में निवास करती है तब उसे बहुल कार्यपालिका कहा जाता है। स्विट्जरलैण्ड की संघीय परिषद तथा सोवियत रूस की प्रेजीडियम बहुल कार्यपालिका के उदाहरण है। स्विट्जरलैण्ड तथा सोवियत रूस में कार्यपालिका की शक्तियाँ सभी सदस्यों में समान से बँटी हुई हैं। इन संस्थाओं का प्रधान मात्र औपचारिक प्रधान होता है। उसे किसी भी प्रकार का विशेष अधिकार प्राप्त नहीं होता।

(घ)**संसदीय एवं अध्यक्षात्मक कार्यपालिका** - संसदीय और अध्यक्षात्मक प्रणालियों में कार्यपालिका के स्वरूप भिन्न होते हैं। संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत कार्यपालिका दो प्रकार की होती है-सांविधानिक और वास्तविक। वास्तविक कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। भारत और ब्रिटेन में मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका है और व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। वास्तविक कार्यपालिका में ही वास्तविक शक्तियाँ निहित रहती है।

अध्यक्षात्मक कार्यपालिका सांविधानिक और वास्तविक एक ही होती है। साथ-ही-साथ वह व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। अमेरिका का राष्ट्रपति अध्यक्षात्मक कार्यपालिका का उदाहरण है। वह यथार्थ रूप में वास्तविक शक्तियों का प्रयोग करता है। वह तथा उसके सचिव कांग्रेस के किसी सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। इसके साथ ही वह राज्य का प्रधान भी होता है।

8.8 कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में संबंध

कार्यपालिका की भूमिका, उसकी शक्तियों एवं कार्यों में विस्तार आदि की चर्चा करने के संदर्भ में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण करना आवश्यक है। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से व्यवस्थापिका राज्य की सर्वोच्च सत्ता है और कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है, परंतु व्यवहार में कार्यपालिका ही प्रधान हो जाती है।

संसदीय शासन.प्रणाली-संसदीय शासन.प्रणाली के अंतर्गत कार्यपालिका तथा विधायिका के बीच घनिष्ठ संबंध रहता है। कार्यपालिका के सदस्य व्यवस्थापिका के सदस्य होते हैं। साथ-ही-साथ व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखती है। व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर निम्नलिखित ढंग से नियंत्रण रखती है-

कार्यपालिका सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रथम लोकप्रिय सदन के प्रति उत्तरदायी होती है।

व्यवस्थापिका प्रश्नों द्वारा, वाद.विवाद के द्वारा, सरकारी नीति की आलोचना करके निंदा का प्रस्ताव पारित कर, स्थगन का प्रस्ताव पारित कर, कटौती का प्रस्ताव पारित कर कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

व्यवस्थापिका का प्रथम सदन मंत्रिमंडल के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर मंत्रिमंडल को अपदस्थ कर सकता है।

व्यवस्थापिका विभिन्न समितियों का गठन कर प्रशासकीय विभागों के कार्यों की जाँच-पड़ताल कर सकती है।

अध्यक्षात्मक शासन.प्रणाली- अध्यक्षात्मक शासन.प्रणाली के अंतर्गत व्यवस्थापिका और कार्यपालिका के बीच घनिष्ठ संबंध नहीं रहता, फिर भी व्यवस्थापिका कार्यपालिका के कुछ कार्यों पर नियंत्रण रखती है। अमेरिका में राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियाँ या संधियाँ तब तक प्रभावी नहीं होती, जब तक कि उनपर सिनेट का अनुसमर्थन प्राप्त न हो जाए। अन्य प्रकार से भी सिनेट राष्ट्रपति पर नियंत्रण रखती है।

वास्तविक स्थिति-आधुनिक युग के संदर्भ में व्यवस्थापिका द्वारा कार्यपालिका पर नियंत्रण एक सैद्धांतिक तथ्य है। व्यवहार में कार्यपालिका ही व्यवस्थापिका को नियंत्रित करती है। संसदीय शासन.प्रणाली के अंतर्गत मंत्रिमंडल लोकसभा को विघटित करने की क्षमता रखती है। व्यवस्थापिका के पास समय के अभाव, विधेयकों में तकनीकी प्रश्नों का उदय, आदि के कारण व्यवस्थापिका अपनी शक्तियों को कार्यपालिका के सम्मुख समर्पित करती जा रही है। आधुनिक संसदों के पास न तो इतना समय है और न इतनी क्षमता है कि वे संपूर्ण कार्य को स्वयं संपादित करें। व्यवस्थापिकाएं केवल नीति निर्धारित करके मूल बातों के संबंध में कानून बनाकर विस्तृत विवेचना का कार्य कार्यपालिका पर छोड़ देती है। प्रदत्त विधान तथा कार्यपालिका द्वारा अध्यादेश जारी करने की क्षमता ने भी व्यवस्थापिका को अधीनस्थ संस्था के रूप में काम करने के लिए विवश कर दिया है।

संसदीय शासन-प्रणाली के अंतर्गत विधि-निर्माण का संपूर्ण कार्य मंत्रिमंडल का रहता है। अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के अंतर्गत प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप में कार्यपालिका विधायन को प्रभावित करती है। अमेरिका में राष्ट्रपति संदेश भेजकर या निषेधाधिकार का प्रयोग कर विधायन को प्रभावित करता है।

उपर्युक्त तथ्य इस बात का समर्थन करते हैं कि व्यवस्थापिका का प्रभाव कम होता जा रहा है और कार्यपालिका अपना प्रभाव बढ़ाती जा रही है। बर्नार्ड ब्राउन ने लिखा है, ''व्यवस्थापिका की स्थापना का उद्देश्य कार्यपालिका की शक्ति को सीमित और नियंत्रित करना है, लेकिन आधुनिक युग में शक्ति का केंद्र व्यवस्थापिका से-हटकर कार्यपालिका की ओर जा रहा है।'' निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते है कि सिद्धांत में आज भी व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने का दावा करती है, पंरतु व्यवस्थापिका पर कार्यपालिका का नियंत्रण रहता है।

वस्तुतः, आज के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि व्यवस्थापिका और कार्यपालिका मिलकर कार्यों का निष्पादन करने का प्रयास करती है। कार्यपालिका की शक्तियों एवं प्रभाव में वृद्धि हुई है, परंतु उसकी शक्तियों का स्त्रोत व्यवस्थापिका ही है।

कार्यपालिका-व्यवस्थापिका-संबंध के संदर्भ में यह कहना उपयुक्त होगा कि आज का विवाद कार्यपालिका-व्यवस्थापिका के सापेक्ष महत्त्व का नहीं है। ये दोनों राजनीतिक दलों के माध्यम से संयुक्त व सहयोगी बन जाते हैं। रिचार्ड न्यूस्टेड ने ठीक ही कहा है, ''आज वास्तविक शक्ति-संघर्ष मुख्य कार्यपालिका तथा व्यवस्थाविका के बीच न होकर यथार्थ में राजनीतिक नेताओं व्यवस्थापिका और कार्यपालिका समान रूप से सरकार का नियंत्रण नौकरशाही के हाथों में खोती जा रही है।''

8.9 न्यायपालिका के कार्य

सरकार के अन्य अंगो की तरह न्यायपालिका के कार्य भी इंगित कर दिए गए है। आधुनिक राज्यमेंन्यायपालिका निम्नलिखित मुख्य कार्यों का संपादन करती है:-

1. न्यायपालिका का सर्वप्रथम तथा सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, झगड़ों एंव विवादो का फैसला करना। पुराने जमानेमेंपंचो के द्वारा आपसी झगड़ों को दूर किया जाता है। अब यह काम न्यायपालिका करती है। न्यायपालिका नागरिको के आपसी झगड़ों एंव विवादो का फैसला करती है।

2. न्यायपालिका कानून का उल्लंघन करनेवालों को दंड देती है। समाजमेंअनेक प्रकार के कानून बनाए जाते है। यदि इन कानूनों का पालन नही हो तो समाज में विश्रंखलता तथा अराजकता का साम्राज्य फैल जाएगा। न्यायपालिका कानून का उल्लंघन करनेवालें को दंड देकर कानून की मर्यादा बरकरार रखती है।

3. कानूनो की व्याख्या करना भी न्यायपालिका का मुख्य कार्य है। विधायिका द्वारा पारित कानूनोंमेंकई अस्पष्टताएँ तथा र्कइं त्रुटियाँ रह जाती है। न्यायालय इन अस्पष्टताओं की व्याख्या कर निंहित त्रुटियों को दूर करती है।

4. संविधान की रक्षा करना न्यायपालिका का सबसे महत्वपूर्ण एंव पुनीत कार्य है। संविधान देश की शासन-व्यवस्था का आधार है। यह देश का मौलिक कानून संविधान की पवित्रता बनी रहती है।

5. न्यायपालिका कानून-निर्माण का भी कार्य करती है। समय-समय पर कानूनों की व्याख्या करने के क्रममेंन्यायपालिका नए कानून का भी निर्माण करती है। औचित्य के आधार पर भी कानून का निर्माण किया जाता है। न्यायपालिका द्वारा निर्मित कानून को केस-लॉ कहा जाता है। लिकॉक के कथानुसार,''न्यायधीशो द्वारा दिया गया निर्णय अप्रत्यक्षा से कानून पूरक होता है। इस दृष्टि से न्यायालय अर्द्ध-विधानमंडल का रूप धारण करके कई वर्तमान कानूनों का निर्माण करता है।''

6. न्यायपालिका पर नागरिक के अधिकारों की रक्षा करने की भी जिम्मेदारी रहती है। न्यायपालिका को नागरिकों के अधिकारों का संरक्षक माना जाता है। मौलिक अधिकारों की रक्षा के क्रम में न्यायालय विभिन्न प्रकार के लेख एंव आदेश जारी करता है। भारत के अनुच्छेद 32 एवं 226 के अंतर्गत नागरिको के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय एंव उच्च न्यायालय क्रमशः आदेश एवं लेख जारी कर सकते है।

7. न्यायपालिका को प्रशासनिंक विभागों या प्राधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों के विरूद्ध अपील सुननें का अधिकार है। भारत में न्यायालय श्रम न्यायधिकरण, आयकर विभाग, चुनाव आयोग आदि के निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनता है।

8. अनेक राज्यों में न्यायपालिका परामर्श देन का भी कार्य करती है। भारत के कई मामलो में राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श ले सकता है। ब्रिटेन में प्रिवी कौसिल भी परामर्श देनें का कार्य करती थीं।

9. न्यायपालिका प्रशासकीय कार्य भी संपादित करतीं है। अपने अधीन काम करनेवाले कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उनकीं सेवा-संबंधी शर्तों को निर्धारित करना, अधींनस्थ न्यायालयों का निरींक्षण एवं अधीक्षण न्यायपालिका के कुछ प्रशासकींय कार्य है।

आधुनिक युग में न्यायपालिका के कार्योंमेंव्यापकता और विविधता दोनों पाई जाती है। प्रो0 मसालदन ने कहा है, ''न्यायपालिका के समस्त कार्यों को दो भागोंमेंरखा जा सकता है-एक सरकार के अन्य अंगो पर नियंत्रण लगाने का कार्य,दूसरा व्यक्ति के अधिकारों से संबंधित कार्य।'' आज के

संदर्भमेंदोनों प्रकार के कार्य समान महत्व के हो गए है और न्यायपालिका दोनों पर समानरूप से ध्यान देती है।

8.10 न्यायपालिका की स्वतंत्रता

न्यायपालिका की प्रभावशीलता के लिए यह आवश्यक है कि न्यायपालिका को स्वतंत्रता प्रदान की जांए। लोकतंत्र की रक्षा सही अर्थमेंतभी की जा सकती है जब न्यायपालिका को सशक्त और स्वतंत्र बनाया जाए। संघात्मक शासन के अंतर्गत तो न्यायपालिका का स्वतंत्र होना अनिवार्य है। साम्यवादीं देशों को छोड़कर प्रायः सभी देशों में न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाए रखने का प्रयास किया गया है। अनेक देशों ने अपने संविधान के अंतर्गत न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के संबंध में आवश्यक प्रावधान किए है। अमेरिका, भारत आदि देशों में न्यायपालिका की स्वतंत्रा पर अत्यधिक बल दिया गया है। न्यायपालिका की स्वतंत्रा के लिए कुछ विधियां है जिन्हे प्रत्येक देशों मेंअपनाया जाता है:-

1. न्यायपालिका की स्वतंत्रा के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति सबसे महत्वपूर्ण परिवर्त्य है। न्यायपालिका के न्यायाधीशों के चुनाव के चार मुख्य तरीके हैः-

i.कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति,

ii.व्यवस्थापिका द्वारा निर्वांचन,

iii.जनता द्वारा चुनाव, और

iv.न्यायिक सेवा प्रतियोगिता द्वारा चुनाव।

आम तौर से न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका के द्वारा ही की जाती है। अनेक दोषांे के बावजूद कार्यपालिका द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति को सर्वाधिक समर्थन मिला है। इस संबंधमेंलास्की ने कहा है, इस विषयमेंसभी बातो को देखते हुए न्यायाधीशों के पदों को राजनीति का शिकार नही बनना चाहिए।

कुछ देशों में न्यायाधीशों को व्यवस्थापिका या जनता द्वारा निर्वाचित करने की व्यवस्था की गई है। जहां तक निर्वाचित न्यायाधीशों का प्रश्न है, इसके पक्ष और विपक्ष में तर्क दिए गए है, परंतु अधिकांश विद्वानों ने इस पद्धति को अस्वीकार किया है।

व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित न्यायाधीशों की पद्धति को भी सर्वमान्यता नही मिली है, क्योंकि समीक्षकों का यह मत है कि व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित न्यायपालिका के हाथों की कठपुतली बन जाएगी। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के दृष्टिकोंण से मुख्य कार्यपालक द्वारा की गई नियुक्ति बेंहतर है, बशर्ते उसके अंतर्गत राजनीतिक आधार न हो।

2. न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति का आधार भी एक प्रबल तत्व है। निष्पक्ष स्वतंत्रता का अर्थ है कि न्यायाधीशों में भ्रष्टाचार नही होना चाहिए और उन पर विधानमंडल तथा कार्यकारिणीं का नियंत्रण नही होना चाहिए।'' अच्छी योग्यता तथा अच्छे चरित्रवाला व्यक्ति अच्छा न्याधींश हो सकता है।

3. न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि वह राजनीतिक दलबंदी से ऊपर हो। सोवियत रूसमेंसाम्यवादी दल के सदस्य या समर्थक ही न्यायधीश नियुक्त होते है, इसलिए सोवियत रूसमेंन्यायपालिका को स्वतंत्र नही कहा जा सकता है। स्वतंत्रता और निष्पक्षता के आधार पर ही अमेंरिका के सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीशों के प्रारंभ में राजनीतिक मसलों पर परामर्श देने से अस्वींकार कर दिया था।

4. न्यायाधीशों की पदच्युति भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता का एक प्रमुख बिंदु है। न्यायाधीशों के पद की सुरक्षा न्यायपालिका की स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण पहलू है। यदि न्यायाधीशों को कार्यपालिका मनमाने ढंग से हटा देती है तो निश्चित रूप से न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अपहरण होगा। अपने पद पर बने रहने के लिए न्यायाधीशों कार्यपालिका के विरूद्ध जाने का प्रयास नही करेगें, यही कारण है कि सभी देशों में न्यायाधीशोंको पदच्युत करने के लिए जटिल प्रक्रिया अपनाई जाती है। भारत और अमेरिकामेंसर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने के लिए विधायिका के दोनों सदनों द्वारा प्रस्ताव पारित होना आवश्यक है। न्यायाधीशों को हटाने की जटिल प्रक्रिया न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक शर्त है।

5.न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए न्यायाधीशों के निश्चित एंव पर्याप्त वेतन-भत्ते आवश्यक है। कम वेतन और भत्ते से न्यायाधीशों को भ्रष्ट होने का भय रहता है। हैमिल्टन के कथानुसार,''यह मानव-स्वभाव है कि जो मनुष्य अपनी आजीविका की दृष्टि से शक्तिसंपन्न है, उसके पास संकल्प का भी बडा बल होता है।'' भारतमेंआपातकाल को छोडकर न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्तेमेंकटौती नही होती, फिर भी यह कहा जा सकता है कि भारतमेंन्यायाधीशों के वेतन एंव भत्ते अपर्याप्त है। अभी कुछ दिनों पूर्व भारत के उच्चतम एंव उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्तेमेंवृद्धिं की गई है।

6. न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए लंबी कार्यावधि आवश्यक है। अमेरिकामेंन्यायधीश 70 वर्ष तक अपने पद पर बने रहते है, यद्यपि सांविधानिक प्रावधानों के अंतर्गत उनके अवकाश-ग्रहण के लिए आयु निर्धारित नही है। छोटी कार्यावधिं के कारण न्यायधीश हमेशा संशकित रहते है। भारतमेंभी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश 65 वर्ष तक अपने पद पर बने रहते है।

7. ग्रहण के बाद नियुक्ति नही-न्यायपालिका और कार्यपालिका का पृथक्करण न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है। अगर न्यायपालिका और कार्यपालिका शक्तियाँ एक ही व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के एक समूहमेंहो न्याय-वितरण का कार्य निष्पक्षता से नही हो सकता। उसी प्रकार यदि न्यायपालिका कार्यपालिका के मातहत हो तो न्यायपालिका स्वतंत्र और निष्पक्ष ढंग से न्याय-वितरण का कार्य नही कर सकती।

उपर्युक्त विश्लेषण इस बात को प्रतिपादित करता है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए कुछ शर्तो का पालन होना आवश्यक है। भारत और अमेरिकामेंन्यायपालिका के स्वतंत्रता के लिए संविधानमेंआवश्यक प्रावधान रखे गए है। व्यवहारमेंभी न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रयास किया गया है। भारत में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के स्थानांतरण को लेकर व्यापक विवाद उठ खडा हुआ था। न्यायाधीशों के स्थानांतरण को न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अवरोधक समझा गया था। पूरे राष्ट्रीय स्तर पर इस विवाद पर विचार-विर्मश किया गया। ब्रिटेन में न्यायपालिका उस सीमा तक स्वतंत्र नही है जिस सीमा तक वह भारत और अमेरिका में है।

अभ्यास प्रश्न

1. न्यायपालिका के दो कार्य बताइए।
2. शक्ति प्रथक्करण सिद्धांत किसने दिया है?
3. राजनीतिक कार्यपालिका का उदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. "अध्यक्षात्मक कार्यपालिका वह है जिसमें कार्यपालिका एवं उसके मंत्री अपने कार्यकाल, नीति एवं कार्यों के लिए वैधानिक दृष्टि से विधानपालिका के नियंत्रण से मुक्त है।" यह कथन किसका है?

8.11 सारांश

सरकार के तीन अंगो-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका-मे न्यायपालिका का विशिष्ट महत्व है। सरकार के जितने भी मुख्य कार्य है, उनमे न्यायकार्य निःसंदेह अति महत्वपूर्ण है, क्योकि इसका संबंध नागरिको से होता है। चाहे कानून के निर्माण की मशीनरी कितनी भी विस्तृत और वैज्ञानिक क्यो न हो, चाहे कार्यपालिका का संगठन कितना भी पूर्ण क्यो न हो, परंतु फिर भी नागरिक का जीवन दुखीः हो सकता है और उसके जान-माल को खतरा उत्पन्न हो सकता है, यदि न्याय करने में देर हो जाए या न्याय में दोष रह जाए अथवा कानून की व्याख्या पक्षपातपूर्ण या भ्रामक हो। ब्राइस ने न्यायपालिका के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, ''न्याय विभाग की कुशलता से बढकर सरकार की उत्तमता की दूसरी कोई भी कसौटी नही है क्योकि किसी ओर चीज से नागरिक की सुरक्षा और हितो पर उतना प्रभाव नही पडता जितना कि उसे इस ज्ञान से कि वह एक निश्चित, शीघ्र एवं निष्पक्ष न्यायशासन पर निर्भर रह सकता है।

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भारत में प्रधानमंत्री, मंत्रीपरिषद् राजनीतिक कार्यपालिका के उदाहरण है। 2. गार्नर

3. कानूनों की व्याख्या करना एवं नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना। 4. मॉन्टेस्क्यू

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. C.F.Strong: Modern Political Constitutuions, 1966, p.11

2. William G.Andrews: Constituion and constitutionsalism, 1971, p. 13

3. Charles h. Macdlwain: Constitutionalism : ancient and modern, 1940, p. 4

8.14 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. George H. Sabine: A history of political theory

2. Robert Dahl: A preface to democratic theory

3. R.C. Macridis and B.E. Brown: Comparative politics

4. K.C. Wheare: Modern Constitution

8.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. न्यायपालिका से आप क्या समझते हैं? इसके कार्यों को स्पष्ट कीजिए।

2. कार्यपालिका से क्या समझते हैं ? उसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें।

3. कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिये।

4. व्यवस्थापिका के संगठन और कार्यों की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

इकाई 9 संसद

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 भारतीय संसद
9.4 संसद का संगठन
9.5 राज्यसभा
9.6 लोकसभा
9.7 संसद की शक्तियॉ
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.13 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में हमने सरकार के तीन अंगों व्यवस्थापिका,कार्यपालिका और न्यायपालिका के बारे में जाना | इसके अंतर्गत हमने व्यस्थापिका, कार्यपालिका आयर न्यायपालिका के आपस में सम्बन्ध, इनके प्रमुख कार्यों के बारे में जाना|

इस इकाई 9 में हम संसद के संगठन ,कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे | जिसमे हम यह अध्ययन करंगे कि की किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेसता का समावेश किया गया है | क्योकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता ,व्यस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योकि कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है | और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है |

इसके साथ ही साथ हम यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार कानून निर्माण में राज्य सभा को ,लोक सभा के सामान शक्तियां न होते हुए भी वह महत्त्वपूर्ण है |

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के उपरान्त हम

1.संसद के संगठन के सम्बन्ध में जान सकेंगे

2.राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

3.लोक सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

4.अंततःकानून निर्माण में लोक सभा के सापेक्ष राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

9.3 भारतीय संसद

जैसा कि हम पहले की इकाइयों में स्पष्ट कर चुके है कि ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए हमारे देश में भी संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है! यह संसदीय प्रणाली संघ और राज्य दोनों ही स्तरों पर अपनाइ गई है! संघीय स्तर के विधान निमा़त्री संस्था को संसद कहते है । राज्य स्तर पर विद्वान निर्मात्री संस्था को हम विधानमंडल कहते है। प्रस्तुत इकाई में सघीय विधायिनी संस्था संसद का ही अध्ययन करेंगे।

संसद का गठन द्विसदनीय सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

(1) उच्च सदन-राज्यसभा और (2) निम्न सदन-लोकसभा (जनप्रतिनिधि सदन)। यहॉ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक हे कि यहीं दोनों सदन मिलकर ही संसद का गठन नहीं करते है वरन् - लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर संसद बनती है । चूंकि संसद का मुख्य कार्य कानून निर्माण है। और कोई भी विधेयक तब तक कानून का रुप नहीं ग्रहण करता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिल जाती है। इसलिए राष्ट्रपति संसद का महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 119 में स्पष्ट रुप से उल्लिखित है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।

भारतीय संसद के संगठन और उसके कार्यो आदि के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के भाग-5 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 119 से 122 तक प्रावधान किया गया है।

यद्यपि हमने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, परन्तु भारतीय संसद ब्रिटेन की संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। क्योंकि उसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है।

9.4 संसद का संगठन

भारतीय संविधान के अनुच्छेउ 119 के अनुसार ष्संघ के लिए संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। संसद के अंग - राष्ट्रपति और दो सदन - 1. राज्यसभा 2. लोकसभा

राष्ट्रपति - संसद का अंग है, जिसकी स्वीकृति के बिना कोइ भी विधेयक कानून का रुप नहीं ले सकता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निवा़चक मंडल द्वारा 5 वर्ष के लिए किया जाता है निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, सभी राजयों की विधानसभाओं के निवा़चित सदस्य है। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधितव की पद्धति से एकल संक्रमणीय मत

पद्धति के द्वारा किया जाता है। समय से पूर्व वह उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र दे सकता है या साबित कदाचार या संविधान के उल्लघंन के आरोप में महाभियोग की प्रक्रिय द्वारा पद से हटाया जा सकता है। जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेउ 61 में किया गया है।

9.5 राज्यसभा

राज्यसभा की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा संसद का उ्च्च सदन है, जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 250 हो सकती है। (यद्यपि वर्तमान समय में इसमें सदस्य संख्या 245 है।)

250 में से 238 सदस्य राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्र से होगा जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। जो साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्र में ख्यातिलबध व्यक्तित्व होंगे । इस उपबन्ध को रखने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि सदन को समाज के योग्य और अनुभवी लोगों के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य ओर संघशासित क्षेत्रों से प्रतिनिधियों की 233 की संख्या का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार से 233+12 = (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) कुल 245 सदस्य राज्यसभा में है। राज्य और संघ-राज्य क्षेत्र में राज्य सभा का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है-

राज्यसभा स्थायी सदन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रुप से एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाता है। राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार । यहॉ हम यह बताते चलें कि संघ शासित क्षेत्रों में केवल दिल्ली और पांडिचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

यद्यपि हमारे देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है, चाहे वे राज्य छोटे हो या बडे हो । हमारे यहॉ उच्च सदन (राज्य सभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न प्रदान कर जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है।

अवधि - राज्यसभा एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता है। किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते है। यहॉ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन तो स्थायी है इसके सदस्यों का कार्यक्रम 6 वर्ष का होता है।

योग्यताएँ- राज्यसभा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ अपेक्षित है-

1. वह भारत का नागरिक है।

2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो

3. वह किसी लाभ के पद पर न हो,

4. वह पागल या दिवालिया न हो,

5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ अथवा राज्य के मंत्री पद लाभ के पद नहीं समझे जाऐंगे।

राज्यसभा के सन्दर्भ में दो पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है-

1- राज्यसभा के लिए वह देश के किसी भी प्रदेश का हो,किसी भी प्रदेश में लड सकता है।

2- राज्यसभा के लिए मतदान खुला और पारदर्शी होगा।

पदाधिकारीः- राज्य के पदाधिकारी

सभापति उपसभापति

उपराष्ट्रपति निर्वाचन राज्यसभा से ही निर्वाचित

संसद के सभी सदस्यों द्वारा (लोकसभा ,राज्यसभा)

राज्यसभा में एक सभापति और एक उपसभापति होते है। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के सभापति होते है। अनुच्छेद - 89 और राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही उपसभापति का चुनाव करती है। उपसभापति सभापति की अनुपस्थिति में सभापति के रुप में कार्य करते है।

(अनुच्छेद 91 के अनुसार) सभापति और उपसभापति को वेतन भारत के संचित निधि से प्रदान किया जाता है। राज्य सभा की गणपूर्ति सदन के सम्पूर्ण सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत । चूंकि वर्तमान में 245 सदस्य है। इसलिए इसकी गणपूर्ति संख्या 25 है।

राज्य सभा के सभापति को सदन को सुचारु संचालन हेतु व्यापक अधिकार प्राप्त होते है।

जब सभापति और उपसभापति दोनों अनुपस्थित हो तो , राज्यसभा के सभापति के कार्यो का निर्वहन राज्यसभा का वह सदस्य करेगा जिसे राष्ट्रपति नामित करेगा।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियॉ-

1. विधायी शक्तियॉ - राज्य सभा, लोकसभा के साथ मिलकर कानून निर्माण का कार्य करती है। साधारण विधेयको (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियॉ प्राप्त है। साधरण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी पहले पेश किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात़ राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यद्यपि अधिकांश विधेयकों को लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जाता है।

यदि विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और दूसरा सदन छ माह तक अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करता है। इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष करते है। इसमें निर्णय बहुमत से होता है। सैद्धान्तिक रुप से तो दोनों सदनों को समान शक्तियॉ है परन्तु व्यवहारतः लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, इसलिए लोकसभा का निर्णय ही निर्णायक होता है।

2- संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान हेतु दोनों सदनों को समान शक्तियॉ प्राप्त है क्योंकि, यह विधेयक भी संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी पेश किये जा सकते है। वे तभी पारित माने जाऐंगें जब दोनों सदनों ने अलग-अलग संविधान में उल्लिखित रीति से पारित किया हो, अन्यथा नहीं। क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों में विवाद की स्थिति में किसी प्रकार से संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार यदि राज्य सभा संशोधन से असहमत है तो वह, संशोधन विधेयक गिर जाएगा।

3- वित्तीय शक्तियॉ- वित्तीय शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा की स्थिति, लोकसभा के समक्ष अत्यन्त निर्बल है क्योंकि कोई भी वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही पेश किये जा सकते है। जब कोई वित्त विधेयक लोकसभा द्वारा पारित होने केपश्चातराज्यसभा में पेश किया जाता है तो राज्यसभा अधिकतम 14 दिन तक उस विधेयक पर विचार करते हुए अपने पास रोक सकती है। उसके विचार को लोकसभा माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि राज्य सभा के विचार को लोकसभा न माने तो 14 दिन की समाप्ति पर विधेयक उसी रुप में पारित समझा जाएगा, जिस रुप में उसे लोकसभा ने पारित किया था।

4- कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियॉ - जैसा कि हम ऊपर देख चुके है कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली प्रचलित है। इसमें कार्यपालिका निम्न सदन (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रुप से उत्तरदायी होती है। न कि राज्यसभा के प्रति। इसलिए राज्यसभा के सदस्य विभागीय मंत्रियों से प्रश्न पूरक प्रश्न, तारांकित, अतारांकित प्रश्न पूछ सकते है, परन्तु मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला सकते है। इस प्रकार की शक्ति केवल लोकसभा के पास है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्यपालिका शक्तियो के सन्दर्भ में राज्यसभा,लोकसभा से बहुत ही निर्बल है।

5- अन्य शक्तियॉ - ऊपर हमने राज्यसभा की शक्तियों का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियॉ भी राज्य सभा की है , जो निम्नलिखित है -

1. राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य भाग लेते है।

2. उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित+मनोनीत) 233+12 भाग लेते है।

3. यह लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से उपराष्ट्रपति को पदच्युत करती है।

4. जब देश में आपात काल लागू हो, तो उसे एक माह से अधिक और संवैधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा हो तो उसे 2 माह से अधिक लागू करने हेतु, लोकसभा के साथ राज्यसभा के द्वारा भी स्वीकृति आवश्यक होती है।

5. लोकसभा के साथ मिलकर राज्यसभा राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदमुक्त करती है।

राज्यसभा के विशेषाधिकार- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यसभा की कुछ ऐसी शक्तियॉ है, जिनका प्रयोग वह अकेले करती है। वे निम्नलिखित है-

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेउ 112 में उल्लिखित है कि - यदि राज्यसभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि नई अखिल भारतीय सेवा के सृजन का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि राज्य सभा इस तरह के प्रस्ताव न पारित करे तो केन्द्र सरकार नई अखिल भारतीय सेवा का सृजन नहीं कर सकती है।

2. इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 - यदि राज्यसभा के, सदन में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्य राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो उस पर संसद को कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रारम्भ में केवल एक वर्ष के लिए ही होता है, परन्तु राज्यसभा की इच्छा से इसे बार-बार 1 वर्ष के लिए बढाया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा द्वितीय सदन है तो, साथ ही दूसरे स्तर के महत्व का भी सदन है।

9.6 लोकसभा

जैसा कि हम पहले भी पढ चुके है कि लोकसभा संघीय संसद का निम्न सदन है, जिसे लोकप्रिय सदन या जनप्रतिनिधि सदन भी कह सकते है क्योंकि इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार (18 वर्ष की आयु के भारतीय) के द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान है कि लोकसभा में राज्यों से अधिकतम 530 सदस्य हो सकते है। 20 सदस्य संघ शासित क्षेत्रों से तथा 2 सदस्य आंग्ल भारतीय समुदाय के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते है। इस प्रकार लोकसभा में अधिकतम सदस्यों की संख्या 552 हो सकती है।

योग्यता- 1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह भारतीय नागरिक 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

3. संघ सरकार या राज्य सरकार के अधीन, वह किसी लाभ के पद पर न हो।

4. वह, पागल या दिवालिया न हो ।

इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताएँ जिसका निर्धारण समय-समय पर संसद करे।

कार्यकाल- मूल संविधान के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था। परन्तु 42 वें संवैधानिक संशोधन 19116 के द्वारा इसका कार्यकाल 6 वर्ष कर दिया गया। परन्तु पुनः 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा कार्यकाल को घटाकर 5 वर्ष के पूर्व भी लोकसभा का विघटन किया जा सकता हैं । इस प्रकार 1970,1977,1979,1990,1997,1999 और 2004 में समय पूर्व विघटन किया गया।

राष्ट्रपति लोकसभा का अधिवेशन बुलाते है। यहॉ स्पष्ट करना आवश्यक है कि लोकसभा की दो बैठकों के बीच अन्तराल अर्थात बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि के बीच अन्तराल 6 मास से अधिक नहीं होना चाहिए। राज्यसभा के समान इसकी गणपूर्ति भी समस्त सदस्यों का दसवॉ भाग है।

लोकसभा की संरचना - प्रथम आम चुनाव के समय (1952) लोकसभा के सदस्यों की निर्धारित संख्या 500 थी। 31 वें संवैधानिक संशोसधन के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि इनकी अधिकतम संख्या 552 हो सकती है। जिनमें 530 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रुप से निर्वाचित होंगे। राज्यों से । जबकि 20 सदस्य संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। इसके साथ ही साथ 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते है। यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि आंग्लभारतीय

समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है | परन्तु व्यवहार में वर्तमान समय में 545 सदस्य है जिनमें 530 राज्यों का प्रतिनिधत्व करते है, 13 संघ राज्य क्षेत्रों से और 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत। राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन

निर्वाचन - लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन भारतीय नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है । मूल संविधान के अनुसार मताधिकार हेतु न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गई थी जबकि 61 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अर्थात् 18 वर्ष की आयु का भारतीय नागरिक अपनी पसन्द के प्रत्याक्षी को मतदान कर सकता है।

कार्यकाल- लोकसभा की अवधि का निर्धारण उसकी बैठक की तिथि से किया जाता है। अपनी बैठक की प्रथम तिथि से 5 वर्ष की अवधि होती है। परन्तु भारतीय संविधन के अनुच्छेद 83 (2) के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर 5 वर्ष के पूर्व भी विघटित कर सकता है। किन्तु यह विघटन अवधि 6 माह से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थात विघटन के 6 माह बीतने के पूर्व ही लोकसभा का निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार के उपबन्ध को रखने का कारण यह कि लोकसभा के दो सत्रों के बीच की अवधि 6 माह से अधिक का नहीं होनी चाहिए।

अधिवेशन - एक वर्ष में लोकसभा के कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। साथ ही पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की प्रथम तिथि के बीच का अन्तराल 6 माह से अधिक का नहीं होना चाहिए । परन्तु यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह अवधि एक ही स्थिति में 6 माह से अधिक हो सकती है जब आगामी अधिवेशन के पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए।

पदाधिकारी- लोकसभा में दो मुख्य पदाधिकारी होते हैं- 1. अध्यक्ष 2. उपाध्यक्ष ।

अपने सभी सदस्यों में से ही लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के रुप में कार्य करते है। परन्तु यदि दोनों अनुपस्थित हो तो सदन का वह व्यक्ति अध्यक्ष के दायित्वों का निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति इस हेतु नियुक्त करे।

अध्यक्ष के द्वारा शपथ, अध्यक्ष के रुप में नहीं वरन् लोकसभा के सदस्य के रुप में ग्रहण करता है । यह शपथ उसे लोकसभा का कार्यकारी अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) दिलाता है जो सदन का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इस परम्परा का अनुसरण फ्रान्स की परम्परा से लिया गया है।

अध्यक्ष को पद से हटाया जाना - लोकसभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा, अध्यक्ष को हटाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव रखने के 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक

है। यहॉ यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि जब अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो, अध्यक्ष, लोकसभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

लोकसभा की शक्तियॉ –

हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। जिसका तात्पर्य है कि अन्तिम रुप से सत्ता जनता में निहित है। लोकसभा जनप्रतिनिधि सदन है क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रुप से किया जाता है। इसलिए लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के अनुरुप लोकसभा को राज्यसभा की अपेक्षा शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया है। इसलिए संसद में लोकसभा,राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर होता है। अब हम लोकसभा के कार्यो और शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1. विधायी शक्ति- जैसा कि हम पहले ऊपर देख चुके है कि साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है। यह विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हो।

परन्तु वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किए जा सकते है। साथ ही वित्त विधेयक उसी रुप में पारित हो जाता है, जिस रुप में लोकसभा चाहती है। क्योंकि लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को राज्य सभा केवल 14 दिन रोग सकती है। इसकेपश्चात वह उसी रुप में पारित समझा जाएगा जिस रुप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। राज्यसभा के किसी भी संशोधन को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।

कार्यपालिका शक्ति- भारतीय संविधान में स्पष्ट रुप से लिखा है भारत की संघीय कार्यपालिका सामूहिक रुप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यहॉ यह भी जानना आवश्यक है कि उसी दल को सरकार बनाने का अधिकार होता, और उसी दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते है। जिसे लोकसभा में समस्त सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। और सरकार तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक उसकों लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। मन्त्रिपरिषद् पर प्रश्न पूछकर, पूरक पश्न, अविश्वास प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्तावों के माध्यम से नियंत्रण रखते है।

संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान संशोधन के महत्वपूर्ण कार्य में भी लोकसभा को शक्तियॉ प्राप्त है। संविधान संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किए जा सकते है और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनो सदन, अलग-अलग संविधान में वर्णित रीति से पारित करे।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है इस सम्बन्ध में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है। इसलिए दोनों की शक्तियॉ समान है।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य- लोकसभा , राज्यसभा के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन तथा राज्यसभा और राज्य विधानसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है।

9.7 संसद की शक्तियॉ

भारतीय संसद यद्यपि ब्रिटिश संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। परन्तु देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है जिसकी प्रमुख शक्तियॉ निम्नलिखित है-

1- कानून निर्माण की शक्तियॉ- शासन के तीन अंग होते है। व्यवस्थापिका ,कार्यपालिका और न्यायपालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कार्यकारी कार्य और न्यायिक कार्य करते है। संसद को संघ सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट शक्तियों पर कानून निर्माण का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है-

1. जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा चल रही हो।
2. जब राज्यसभा, अनुच्छेउ 249 के अनुसार, दो तिहाई बहुमत से राज्यसूची के विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर संसद से विधि निर्माण हेतु आग्रह करें।
3. जब दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित कर राज्य सूची के विषय पर कानून निर्माण हेतु संसद से आग्रह करें।

2. कार्यकारी कार्य- संसद का अंग लोकसभा होती है। जिसके बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री उन्हीं में से अपने मन्त्रिपरिषद् का गठन करते है।

अनु0 115 (3) के अनुसार मंत्रिपरिषद लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

वित्तीय कार्य- संसद ही संघ के वित्त नियंत्रण रखती है। वित्त का नियमन करने में संसद की भूमिका निर्णायक होती है। जिसमें उसकी दो महत्वपूर्ण समितियॉ लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के संचित निधि से धन, संसद की स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकता है। वार्षिक बजट और रेल बजट संसद के समक्ष पेश किया जाता है। उक्त के साथ-साथ संसद विनियोग विधेयक, अनुपूरक अनुदान, अतिरिक्त अनुदान, लेखानुदान आदि के सम्बन्ध में निर्णायक शक्ति है।

राज्यों से सम्बन्धित कार्य- नए राज्य के गठन, उसकी सीमा और नाम में परिवर्तन का अधिकार संसद को है। इसके तहत वह एक राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना सकती है।

महाभियोग सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 61में स्पष्ट उल्लेख है कि संसद साबित कदाचार या संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति पर विशेष प्रक्रिया से महाभियोग लगा सकती है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदच्युत कर सकते है।

संविधान संशोधन की शक्ति - उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसद की शक्तियॉ व्यापक है। परन्तु वे अमर्यादित नहीं है क्यों कि भारतीय संसद अपनी सीमाओं में ही कार्य करती है।

अभ्यास प्रश्न

1.राष्ट्रपति संसद का अंग है। सत्य असत्य /

2.संसद राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है ,। सत्य असत्य /

3.राज्य सभा संसद का जनप्रतिनिधि सदन है। सत्य असत्य /

4.लोक सभा के सदस्यों का जनता के द्वारा निर्वाचन किया जाता है। सत्य असत्य /

5.राज्य सभा का कार्य कल ६ वर्ष है। सत्य असत्य /

6.राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव जनता करती है। सत्य असत्य /

11.राज्य सभा में वर्तमान समय में 543 सदस्य है । सत्य असत्य /

9.8 सारांश

इस इकाई में हमने संसद के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेसता का समावेश किया गया है | क्योकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता ,व्यस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योकि कार्य पालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है | और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती है क्योकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तबतक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है |

साथ ही हमने इस इकाई में यह भी अध्ययन किया है कि राज्य सभा प्रथम दृष्टया तो कानून निर्माण में सामान दिखाई देती है परन्तु संवैधानिक संशोधन विधेयक के अतिरिक्त सामान्य विधेयक और वित्तीय विधेयक के मामले में स्थिति गौण है क्योंकि राज्य सभा सामान्य विधेयक को अधिकतम ६ माह तक रोक सकती है और वित्त विधेयक को केवल १४ दिन तक रोक सकती है ,इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित होगा जिस रूप में लोक सभा चाहेगी |राज्य सभा की आपत्तियाँ का उस विधेयक पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़ सकती हैं | फिर भी जल्दबाजी में कोई विधेयक न पारित हो ,उसके सभी पक्षों पर विचार हो सके इस दृष्टि से राज्य सभा अति महत्वपूर्ण सदन है | इस समय तो

और भी जबकि लोक सभा में किसी दल या संगठन को बहुमत हो जबकि राज्य सभा में किसी दल या संगठन को |

9.9 शब्दावली

संसद -- राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

नाम मात्र की कार्यपालिका – संसदीय शासन प्रणाली में नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अंतर पाया जाता है | नाम मात्र की कार्यपालिका वह होता है जिसमें संवैधानिक रूप से सभी शक्तियां निहित होती हैं परन्तु उन शक्तियों का वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है ,वरन मंत्रिपरिषद करती है | भारत में नाम मात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति और ब्रिटेन में सम्राट होते हैं |

वास्तविक कार्यपालिका – यह वह कार्यपालिका जो नाम मात्र की कार्यपालिका को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग उसके नाम से करती है | जैसे भारत और ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद |

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 11. असत्य

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

11.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.संसद के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये ?

इकाई 10 स्थानीय स्वशासन

10 .1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य
10.4 संविधान में संशोधन व स्थानीय स्वशासन
10.4 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता
10.6 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें
10.7 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध
10.8 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा ?
10.9 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंध
10.10 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम
10.10.1 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
10.10.2 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें
10.11 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां
10.12 सारांश
10.13 पारिभाषिक शब्दावली
10.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.16 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.17 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

स्थानीय स्वशासन लोगों की अपनी स्वयं की शासन व्यवस्था का नाम है। अर्थात स्थानीय लोगों द्वारा मिलजुलकर स्थानीय समस्याओं के निदान एवं विकास हेतु बनाई गई ऐसी व्यवस्था जो संविधान और राज्य सरकारों द्वारा बनाए गये नियमों एवं कानून के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों में 'स्वशासन' गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी है।

यदि हम इतिहास को पलट कर देखें तो प्राचीन काल में भी स्थानीय स्वशासन विद्यमान था। सर्वप्रथम कुटुम्ब से कुनबे बने और कुनबों से समूह। ये समूह ही बाद में ग्राम कहलाये। इन समूहों की व्यवस्था प्रबन्धन के लिये लोगों ने कुछ नियम, कायदे कानून बनाये। इन नियमों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म माना जाता था। ये नियम समूह अथवा गांव में शांति व्यवस्था बनाये रखने, सहभागिता से कार्य करने व गांव में किसी प्रकार की समस्या होने पर उसके समाधान करने, तथा सामाजिक न्याय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। गांव का संम्पूर्ण प्रबन्धन तथा व्यवस्था इन्हीं नियमों के अनुसार होती थी। इन्हें समूह के लोग स्वयं बनाते थे व उसका क्रियान्वयन भी वही लोग करते थे। कहने का तात्पर्य है कि स्थानीय स्वशासन में लोगों के पास वे सारे अधिकार हों जिससे वे विकास की प्रक्रिया को अपनी जरूरत और अपनी प्राथमिकता के आधार पर मनचाही दिशा दे सकें। वे स्वयं ही अपने लिये प्राथमिकता के आधार पर योजना बनायें और स्वयं ही उसका क्रियान्वयन भी करें। प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, जंगल और जमीन पर भी उन्हीं का नियन्त्रण हो ताकि उसके संवर्द्धन और संरक्षण की चिन्ता भी वे स्वयं ही करें। स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के पीछे सदैव यही मूलधारणा रही है कि हमारे गांव, जो वर्षों से अपना शासन स्वयं चलाते रहे हैं, जिनकी अपनी एक न्याय व्यवस्था रही है, वे ही अपने विकास की दिशा तय करें। आज भी हमारे कई गांवों में परम्परागत रूप में स्थानीय स्वशासन की न्याय व्यवस्था विद्यमान है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पठने के उपरान्त आप यह जानने में सक्षम होंगे

1 स्थानीय स्वशासन के विषय में जान पायेंगे।

2 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी संबंध।

3 स्थानीय स्वशासन की मजबूती और ग्रामीण विकास के साथ उसके संबंध।

4 स्थानीय स्वशासन के महत्व को बतलाना।

5 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास के बीच संबंध।

6 73वें व 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में मुख्य बातें।

10.3 स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य

स्थानीय स्वशासन शासन की वह व्यवस्था है जिसमें निचले स्तर पर शासन के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी समस्याओं को समझने तथा उनका हल करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था एक ओर तो लोकतांत्रिक व्यवस्था सुनिश्चित करती है तो दूसरी ओर आम जनता को स्वयं अपनी समायाओं के हल का मार्ग प्रशस्त करती है।

महात्मां गांधी ग्राम स्वराज के पक्षधर थे। भारत गावों का देश है, अतः गावों के विकास के बिना भारत की प्रगति संभव नहीं। गांधी जी गांवों को राजनीतिक व्यवस्था का केन्द्र बनाना चाहते थे जाकि निचले स्तर पर लोगों को राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में शामिल किया जा सके। इसी प्रकार उनको पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी व मजबुत बनाने की वकालत की थी।

1 गांव के लोगों की गांव में अपनी शासन व्यवस्था हो व गांव स्तर पर स्वयं की न्याय प्रक्रिया हो।

2 ग्रामस्तरीय नियोजन, क्रियान्वयन व निगरानी में गांव के हर महिला पुरूष की सक्रिय भागीदारी हो।

3 किस प्रकार का विकास चाहिये या किस प्रकार के निर्माण कार्य हों या गांव के संसाधनों का प्रबन्धन व संरक्षण कैसे होगा? ये सभी बातें गांव वाले तय करेगें।

4 गांव की सब तरह की समस्याओं का समाधान गांव के लोगों की भागीदारी से ही हो।

5 ऐसा शासन जहां लोग स्थानीय मुद्दों, गतिविधियों में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा सकें।

6 स्थानीय स्तर पर स्वशासन को लागू करने का माध्यम गांव के लोगों द्वारा, मान्यता प्राप्त लोगों का समूह हो जिन्होंने सम्पूर्ण गांव का विकास, व्यवस्था व प्रबन्धन करना है। ऐसा समूह जिसका निर्णय सभी को मान्य हो।

10.4 संविधान में संशोधन व स्थानीय स्वशासन

हमारे देश में पंचायतों की व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। पंचायतों के कार्य भी लगभग समान हैं, उनके स्वरूप में जरूर परिवर्तन हुआ है। पहले पंचायतों का स्वरूप कुछ और था। उस समय वह संस्था के रूप में कार्य करती थी। और गांव के झगड़े, गांव की व्यवस्थायें सुधारना जैसे फसल सुरक्षा, पेयजल, सिंचाई, रास्ते, जंगलों का प्रबंधन आदि मुख्य कार्य हुआ करते थे। लोगों को

पंचायतों के प्रति बड़ा विश्वास था। उनका निर्णय लोग सहज स्वीकार कर लेते थे। और हमारी पंचायतें भी बिना पक्षपात के कोई निर्णय किया करती थी। ऐसा नहीं कि पंचायतें सिर्फ गांव का निर्णय करती थी। बड़े क्षेत्र, पट्टी, तोक के लोगों के मूल्यों से जुड़े संवेदनशील निर्णय भी पंचायतें बड़े विश्वास के साथ करती थी। इससे पता लगता है कि पंचायतों के प्रति लोगों का पहले कितना विश्वास था। वास्तव में जिस स्वशासन की बात हम आज कर रहे हैं, असली स्वशासन वही था। जब लोग अपना शासन खुद चलाते थे, अपने विकास के बारे में खुद सोचते थे, अपनी समस्यायें स्वयं हल करते थे एवं अपने निर्णय स्वयं लेते थे।

धीरे-धीरे ये पंचायत व्यवस्थायें आजादी के बाद समाप्त होती गई। इसका मुख्य कारण रहा, सरकार का दूरगामी परिणाम सोचे बिना पंचायत व्यवस्थाओं में अनावश्यक हस्तक्षेप। जो छोटे-छोटे विवाद पहले हमारे गांव में हो जाते थे अब वह सरकारी कानून व्यवस्था से पूरे होते हैं, जिन जंगलों का हम पहले सुरक्षा भी करते थे और उसका सही प्रबंधन भी करते थे अब उससे दूरियां बनती जा रही हैं और उसे हम अधिक से अधिक उपभोग करने की दृष्टि से देखते हैं। जो गांव के विकास संबंधी नजरिया हमारा स्वयं का था उसकी जगह सरकारी योजनाओं ने ले ली है। और सरकारी योजनाएं राज्य या केन्द्र में बैठकर बनाई जाने लगी और गांवों में उनका क्रियान्वयन होने लगा।

परिणाम यह हुआ कि लोगों की जरूरत के अनुसार नियोजन नहीं हुआ और जिन लोगों की पहुँच थी, उन्होंने ही योजनाओं का उपभोग किया। लोग योजनाओं के उपभोग के लिए हर समय तैयार रहने लगे चाहे वह उसके जरूरत की हो या न हो। उसको पाने के लिए व्यक्ति खीचातानी में लगा रहा। इससे कमजोर वर्ग धीरे-धीरे और कमजोर होता गया। और लोग पूरी तरह सरकार की योजनाओं और सब्सिडी(छूट) पर निर्भर होने लगे। धीरे-धीरे पंचायत की भूमिका गांव के विकास में शून्य हो गई। लोग भी पुरानी पंचायतों से कटते गये।

लेकिन 80 के दशक में यह लगने लगा कि सरकारी योजनाओं का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक नहीं पहुँच पा रहा है। यह भी सोचा जाने लगा कि योजनाओं को लोगों की जरूरत के मुताबिक बनाया जाय। योजनाओं के नियोजन और क्रियान्वयन में भी लोगों की भागीदारी जरूरी समझी जाने लगी। तब ऐसा महसूस हुआ कि ऐसी व्यवस्था कायम करने की आवश्यकता है जिसमें लोग खुद अपनी जरूरत के अनुसार योजनाओं का निर्माण करें और स्वयं उनका क्रियान्वयन करें।

इसी सोच के आधार पर पंचायतों को कानूनी तौर पर नये काम और अधिकार देने की सोची गई ताकि स्थानीय लोग अपनी जरूरतों को पहचानें, उसके उपाय खोजें, उसके आधार पर योजना बनायें, योजनाओं को क्रियान्वित करें और इस प्रकार अपने गांव का विकास करें। इस सोच को समेटते हुए सरकार ने संविधान में 73वाँ संविधान संशोधन कर पंचायतों को नये काम और अधिकार

दे दिये हैं। इस प्रकार केन्द्र और राज्य सरकार की तरह पंचायतें भी स्थानीय लोगों की अपनी सरकार की तरह कार्य करने लगी।

10.5 स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता

स्थानीय स्वशासन में लोगों के हितों की रक्षा होती है तथा स्थानीय लोगों की सहभागिता से आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं बनायी व लागू की जाती हैं।ग्रामीण विकास हेतु किये जाने वाले किसी भी कार्य में स्थानीय एवं वाह्य संसाधनों का लोगों द्वारा बेहतर उपयोग किया जाता है। स्थानीय लोग अपनी समस्याओं एवं प्राथमिकताओं से भली-भांति परिचित होते हैं। तथा लोग अपनी समस्या एवं बातों को आसानी से रख पाते हैं। स्थानीय स्वशासन व्यवस्था से लोगों की भागीदारी से जिम्मेदारी का अहसास होता है और स्थानीय स्तर की समस्याओं का निदान व विवादों का निपटारा लोग स्वयं करते हैं। गांव के विकास में महिलाओं, निर्बल, कमजोर एवं पिछडे वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित होती है तथा वास्तविक लाभार्थी को लाभ मिलता है।

10.6 स्थानीय स्वशासन व पंचायतें

स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने में पंचायतों की अहम भूमिका है। पंचायतें हमारी संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त संस्थायें हैं और प्रशासन से भी उनका सीधा जुड़ाव है। भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आयी हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम पंचायतें ही हैं। चूंकि पंचायते स्थानीय लोगों के द्वारा गठित होती हैं , और इन्हें संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है, अतः पंचायते स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का एक अचूक तरीका है। ये संवैधानिक संस्थाएं ही आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएं ग्रामसभा के साथ मिलकर बनायेंगीं व उसे लागू करेंगी। गांव के लिये कौन सी योजना बननी है? कैसे क्रियान्वित करनी है? क्रियान्वयन के दौरान कौन निगरानी करेगा? ये सभी कार्य पंचायतें गांव के लोगों (ग्रामसभा सदस्यों) की सक्रिय भागीदारी से करेंगी। इससे निर्णय स्तर पर आम जनसमुदाय की भागीदारी सुनिश्चित होगी।

स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत हो सकता है जब पंचायतें मजबूत होंगी और पंचायतें तभी मजबूत होंगी जब लोग मिलजुलकर इसके कार्यों में अपनी भागीदारी देंगे और अपनी जिम्मेदारी को समझेंगे। लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये पंचायतों के कार्यों में पारदर्शिता होना जरूरी है। पहले भी लोग स्वयं अपने संसाधनों का, अपने ग्राम विकास का प्रबन्धन करते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह प्रबन्धन आज से कहीं बेहतर भी होता था। हमारी परम्परागत रूप से चली आ रही स्थानीय स्वशासन की सोच बीते समय के साथ कमजोर हुई है। नई पंचायत व्यवस्था के माध्यम से इस परम्परा को पुनः जीवित होने का मौका मिला है। अतः ग्रामीणों को चाहिये कि पंचायत और

स्थानीय स्वशासन की मूल अवधारणा को समझने की चेष्टा करें ताकि ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक बन सकें।

गांवों का विकास तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण ग्रामवासियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जायेगा। जब तक गांव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास के निर्णयों में गांव के पहले तथा अन्तिम व्यक्ति की बराबर की भागीदारी नहीं होगी तब तक हम ग्राम स्वराज की कल्पना नहीं कर सकते हैं। जनसामान्य की अपनी सरकार तभी मजबूत बनेगी जब लोग ग्रामसभा और ग्रामपंचायत में अपनी भागीदारी के महत्व को समझेंगे।

10.7 स्थानीय स्वशासन व पंचायतों में आपसी सम्बन्ध

भारत में प्राचीन काल से ही स्थानीय स्तर पर शासन का संचालन पंचायत ही करती आई हैं। स्थानीय स्तर पर स्वशासन के स्वप्न को साकार करने का माध्यम हैं पंचायतें।

चूंकि पंचायतें स्थानीय स्तर पर गठित होती हैं अतः पंचायतें स्थानीय स्वशासन को स्थापित करने का अचूक तरीका है। पंचायत में गांव के विकास हेतु स्थानीय लोग ही निर्णय लेते हैं, विवादों का निपटारा करतें हैं, स्थानीय मुद्दों के लिए कार्य करते हैं अतः गांव की हर गतिविधि व कार्य में स्थानीय लोगों की ही भागीदारी रहती है। पंचायत द्वारा बनाये गये विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों की भागीदारी होती है तथा स्थानीय लोगों को ही इसका लाभ मिलता है। अतः पंचायत स्थानीय लोगों के अधिकारों व हकों की सुरक्षा करती है।

स्थानीय स्वशासन की दिशा में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम एक कारगार एवं क्रान्तिकारी कदम है। लेकिन गांव के अन्तिम व्यक्ति की सत्ता एवं निर्णय में भागीदारी से ही स्थानीय स्वशासन की सफलता आंकी जा सकती है। स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव के हर वर्ग चाहे दलित हों अथवा जनजाति, महिला हो या फिर गरीब, सबकी समान रूप से स्वशासन में भागीदारी होगी। इस के लिये गांव के प्रत्येक ग्रामीण को उसके अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। हम अपने गांवों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास की कल्पना तभी कर सकते है जब गांव के विकास संबन्धी समुचित निर्णयों में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी होगी। लेकिन इस सबके लिये पंचायत व्यवस्था ही एकमात्र एक ऐसा मंच है जहॉ आम जन समुदाय पंचायत प्रतिनिधियों के साथ मिलकर स्थानीय विकास से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर विचार कर सकते हैं और सबके विकास की कल्पना को साकार रूप दे सकते हैं।

10.8 स्थानीय स्वशासन कैसे मजबूत होगा ?

1 .स्थानीय स्वशासन की मजबूती के लिए सर्वप्रथम पंचायत में सुयोग्य प्रतिनिधियों का चयन होना आवश्यक है। पंचायत का नेतृत्व करने के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन किया जाना चाहिए जिसकी स्वच्छ छवि हो व वह निःस्वार्थ भाव वाला हो।

2.सक्रिय ग्राम सभा पंचायती राज की नींव होती है। अगर ग्रामसभा के सदस्य सक्रिय होंगे व अपनी भूमिका तथा जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होंगे तभी एक सशक्त पंचायत की नींव पड़ सकती है। अतः ग्राम सभा के हर सदस्य को जागरूक रह कर पंचायत के कार्यों में भागीदारी करनी चाहिए। तभी स्थानीय स्वशासन मजबूत हो सकता है।

3 .स्थानीय स्तर पर उपलब्ध भौतिक, प्राकृतिक, बौद्धिक, संसाधनों का बेहतर उपयोग एवं उचित प्रबन्घन से ही विकास प्रक्रिया को गति प्रदान की जा सकती है। अतः स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग द्वारा पंचायतें अपनी स्थिति को मजबूत बनाकर ग्राम व ग्रामवासियों के विकास को गति प्रदान कर सकती है।

4 .स्थानीय स्वशासन तभी मजबूत होगा जब गांव वासी अपनी आवश्यकता व प्राथमिकता के अनुसार योजनाओं व कार्यक्रमों का नियोजन करेंगे व उनका स्वयं ही क्रियान्वयन करेंगे। उपर से थोपी गई परियोजनायें कभी भी ग्रामीणों में योजना के प्रति अपनत्व की भावना नहीं ला सकती, अतः सूक्ष्म नियोजन के आधार पर ही योजनाएं बनानी होंगी तभी वास्तविक रूप से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा।

5 .पंचायतों की मजबूती का एक महत्वपूर्ण पहलू है निष्पक्ष सामाजिक न्याय व्यवस्था व महिला पुरूष समानता को बढ़ावा देना। पंचायतें सामाजिक न्याय व आर्थिक विकास को ग्राम स्तर पर लागू करने का माध्यम हैं। अतः समाज के वंचित, उपेक्षित व शोषित वर्ग को विकास प्रक्रिया मे भागीदारी के समान अवसर प्रदान करने से ही पंचायती राज की मूल भावना " लोक शासन" को मूर्त रूप दे सकती है।

6 युवा किसी भी देश व समाज के लिए पूँजी हैं। इनके अन्दर प्रतिभा, शक्ति व हुनर विद्यमान हैं इस युवा शक्ति व प्रतिभा का पलायन रोककर व उनकी शक्ति व उर्जा का रचनात्मक कार्यो में सदुपयोग किया जाए तो वे स्थानीय स्तर पर पंचायतों की मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

7 पंचायतीराज की मजबूती के लिए सत्ता का वास्तविक रूप में विकेन्द्रीकरण अर्थात कार्य, कार्मिक व वित्त सम्बन्धित वास्तविक अधिकार पंचायतों को हस्तांतरित करना आवश्यक है। इनके बिना पंचायतें अपनी भूमिका व जिम्मेदारियों को सफलता पूर्वक निभाने में असमर्थ हैं।

10.9 स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंध

1 .स्थानीय स्वशासन और ग्रामीण विकास एक दूसरे के पूरक हैं। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से गांव की समस्याओं को प्राथमिकता मिल सकती है व ग्रामीण विकास को आगे बढ़ाया जा सकता है।

2.स्थानीय स्वशासन की आधारशिला पंचायत है अतः पंचायत के माध्यम से गांव के समुचित प्रबन्धन में समुदाय की भागीदारी बढ़ती है।

3 .ग्राम विकास की समस्त योजनाएं गांव के लोगों द्वारा ही बनाई जायेंगी व लागू की जायेंगीं। इससे विकास कार्यों के प्रति सामूहिक सोच को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही स्थानीय समुदाय का विकास की गतिविधियों में पूर्ण नियन्त्रण।

4 .ग्रामीण विकास प्रक्रिया में सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व एवं सब को समान महत्व मिलने से स्थानीय स्वशासन मजबूत होगा। महिलाओं तथा कमजोर वर्गो की भागीदारी से ग्राम विकास की प्रक्रिया को मजबूती मिलेगी।

5 .मजबूत स्थानीय स्वशासन से किसी भी प्रकार के विवादों का निपटारा गांव स्तर पर ही किया जा सकता है।

6 .स्थानीय समुदाय की नियोजन व निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी से विकास जनसमुदाय व गांव के हित में होगा। इससे लोगों की समस्याओं का समाधान भी स्थानीय स्तर पर सबके निर्ण द्वारा होगा। स्थानीय संसाधनों का समुचित विकास व उपयोग होगा तथा सामूहिकता का विकास होगा।

अभ्यास प्रश्न-1

1. ग्राम स्वराज के पक्षधर थे?

क. तिलक ख. महात्मां गांधी

ग. जवाहर लाल नेहरु घ. सरदार पटेल

2. स्थानीय स्वशासन से संबंधित..... संविधान संशोधन हैं?

10.10 स्थानीय स्वशासन के लिए संविधान में 73वां और 74वां संविधान संशोधन अधिनियम

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की गई। इसी प्रकार चौहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा भारत के नगरीय क्षेत्रों में नगरीय स्वशासन की स्थापना की गई। इन अधिनियमों के अनुसार भारत के प्रत्येक राज्य में नयी पंचायती राज व्यवस्था को आवश्यक रूप से लागू करने के नियम बनाये गये। इस नये पंचायत राज अधिनियम से त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने व स्थानीय स्तर पर उसे मजबूत बनाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस अधिनियम में जहां स्थानीय स्वशासन को प्रमुखता दी गई है व सक्रिय किये जाने के निर्देश हैं, वहीं दूसरी ओर सरकारों को विकेन्द्रीकरण हेतु बाध्य करने के साथ-साथ वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिये वित्त आयोग का भी प्रावधान किया गया है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात "नया पंचायती राज अधिनियम" प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र को जनता तक पहुंचाने का एक उपकरण है। गांधी जी के स्वराज के स्वप्न को साकार करने की पहल है। पंचायती राज स्थानीय जनता का, जनता के लिये, जनता के द्वारा शासन है।

10.10.1 तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य बातें

तिहत्तरवें संविधान अधिनियम में निम्न बातों को शामिल किया गया है -

1 73वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। अर्थात पंचायती राज संस्थाएं अब संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएं हैं।

2नये पंचायती राज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा को संवैधानिक स्तर पर मान्यता मिली है। साथ ही इसे पंचायत व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया गया है।

3 यह तीन स्तरों - ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत पर चलने वाली व्यवस्था है।

4 .एक से ज्यादा गांवों के समूहों से बनी ग्राम पंचायत का नाम सबसे अधिक आबादी वाले गांव के नाम पर होगा।

5 .इस अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिये त्रिस्तरीय पंचायतों में एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिया गया है।

6 .अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिये भी जनसंख्या के आधार पर आरक्षण दिया गया है। आरक्षित वर्ग के अलावा सामान्य सीट से भी ये लोग चुनाव लड़ सकते हैं।

7 .पंचायतों का कार्यकाल पांच वर्ष तय किया गया है तथा कार्यकाल पूरा होने से पहले चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया गया है।

8 .पंचायत 6 माह से अधिक समय के लिये भंग नहीं रहेगी तथा कोई भी पद 6 माह से अधिक खाली नहीं रहेगा।

9.इस संशोधन के अन्तर्गत पंचायतें अपने क्षेत्र के अर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण की योजनायें स्वयं बनायेंगी और उन्हें लागू करेंगी। सरकारी कार्यों की निगरानी अथवा सत्यापन करने का भी अधिकार उन्हें दिया गया है।

11 .73वें संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को ग्राम सभा के सहयोग से विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं के अन्तर्गत लाभार्थी के चयन का भी अधिकार दिया गया है।

11 .हर राज्य में वित्त आयोग का गठन होता है। यह आयोग हर पांच साल बाद पंचायतों के लिये सुनिश्चित आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर वित्त का निर्धारण करेगा।

12.उक्त संशोधन के अन्तर्गत ग्राम प्रधानों का चयन प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा तथा क्षेत्र पंचायत प्रमुख व जिला पंचायत अध्यक्षों का चयन निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुना जाना तय है।

13 .पंचायत में जबाबदेही सुनिश्चित करने के लिये छः समितियों (नियोजन एवं विकास समिति, शिक्षा समिति तथा निर्माण कार्य समिति, स्वास्थ्य एवं कल्याण समिति, प्रशासनिक समिति, जल प्रबन्धन समिति) की स्थापना की गयी है। इन्हीं समितियों के माध्यम से कार्यक्रम नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जायेगा।

14 . हर राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। यह आयोग निर्वाचन प्रक्रिया, निर्वाचन कार्य, उसका निरीक्षण तथा उस पर नियन्त्रण भी रखेगा।

कुल मिलाकर संविधान के 73वें संशोधन ने नवीन पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत न सिर्फ पंचायतों को केन्द्र एवं राज्य सरकार के समान एक संवैधानिक दर्जा दिया है अपितु समाज के कमजोर, दलित वर्ग को विकास की मुख्य धारा से जुड़ने का भी अवसर दिया है।

10.10.2 चौहतरवें (74) वें संविधान संशोधन में मुख्य बातें

1. संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगर-प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।

२.इस संशोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है

3.नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिश्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक नगर व शहरों में रहने वाली आम जनता की पहुंच बढ़ाई गई है।

4.समाज कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिशतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।

5.74वें संशोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।

6.इस संविधान संशोधन की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्शिता व लोगों की आवाज पहुंचाना सुनिश्चित करना है।

7.देश में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।

8.नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।

९.नियमित समयान्तराल में प्रादेशिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रशासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जनप्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

11.समाज की कमजोर जनता का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिये (संविधान संशोधन अधिनियम में प्राविधानित/निर्दिष्ट) प्रतिशतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेशिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रशासन में आरक्षण मिलें।

11.प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेशिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त

हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।

12.सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्शिता रहे।

10.11 स्थानीय स्वशासन की विशेषताएं और चुनौतियां

स्थानीय स्वशासन लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसके द्वारा प्रशासन में स्थानीय लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर सुदूर गावों तक विकास की प्रक्रिया का लाभ पहुंचाया जा सकता है। स्थानीय लोगों में राजनीतिक चेतना का विकास करने के अलावा स्थानीय समस्याओं का बेहतर हल खोज पाना ही इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य रहा है। नई पंचायती राज व्यवस्था से अनेक अपेक्षाएं हैं। इस आधार पर स्थानीय स्वशासन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

1. स्थानीय समस्याओं का निराकरण स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा बेहतर तरीके से किया जाना।

2. लोगों की समस्याओं को समझना ओर उसके हल के लिए योजनाएं बनाना।

3. दुर्गम व दुरस्थ गावों तक राजनीतिक समझ को परिपक्व करना तथा राजनीतिक चेतना का विकास करना।

4. सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा अधिकाधिक लोगों का प्रशासन व विकास में भागीदारी सुनिश्चित करना।

5. अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं को राजनीतिक रुप से सक्रिय करना तथा उनका सर्वांगिण विकास करना।

किन्तु स्थानीय स्वशासन के लिए यह मार्ग चुनौतियों से भरा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभिक वर्षों में प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज की असफलता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। वर्तमान में पंचायजी राज व्यवस्था के समक्ष कई चुनौतियां खड़ी हैं।

1. स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के समक्ष वित्तीय संसाधनों की कमी है, तथा उन्हें राज्यों के सहायता अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है।

2. स्थानीय स्वशासी संस्थाएं विकास का साधन न होकर राजनीतिक दलों के प्रशिक्षण के केन्द्र बनते जा रहे हैं।

3. पंचायती राज में महिलाओं को आरक्षण प्रदान किया गया है, परन्तु महिलाएं आज भी इस व्यवस्था में स्वतंत्र होकर व स्व निर्णय लेकर कार्य नहीं कर पा रही हैं।

4. पंचायती राज व्यवस्था में धन व शक्ति के दुरुपयोग के मामले भी सामने आते रहे हैं, इससे निपटना भी एक चुनौती पूर्ण कार्य है।

पंचायती राज व्यवस्था की सफलता के लिए जनता का जागरुक होना जरुरी है। साथ ही निर्वाचित प्रतिनिधियों को को भी अपना दायित्व सक्रियता से निभाना होगा तथा उन्हें जाति, धर्म व सम्प्रदाय से उपर उठ कर विकास कार्यों पर अपना ध्यान लगाना होगा।

अभ्यास प्रश्न-2

1. 73वॉ संविधान संशोधन किस से संबंधित है।

कपंचायतों .ख नगर निकायों .

गविधान सभाओं .शिक्षण संस्थाओं ग .

2. किस संविधान संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों को पहली बार संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया?

3. नगर निकायों से संबंधितसंविधान संशोधन है .....?

10.12 सारांश

शासन-प्रणाली के उपलब्ध रुपों में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली सर्वोच्च व उत्तम है क्यों कि इस शासन प्रणाली में जनता की भागीदारी सुनिश्चित रहती है। जनता की भागीदारी को अधिक मजबुत बनाने और शासन में उनकी पहुँच को सुलभ बनाने के लिए स्थानीय स्वशासन की कल्पना को साकार करने के लिए संविधान में 73वां और 74वॉ संसोधन किया गया।

73वें व 74वें संविधान संशोधन के द्वारा गांव स्तर पर ग्राम पंचायतों क्षेत्र स्तर पर क्षेत्र पंचायतों व जिला स्तर पर जिला परिषदों व शहरी स्तर पर नगर पालिका, नगर परिषद, नगर पंचायत व नगर परिषदों का गठन कर स्थानीय स्वशासन को साकार रुप दिया गया। स्थानीय स्वशासन के इन रुपों के माध्यम से स्थानीय लोगों की शासन-सत्ता में सीधी भागीदारी सुनिश्चित हुई है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से स्थानीय स्तर पर जनहित के कार्यों में सक्रियता, निचले स्तर पर शासन में भागीदारी और और समस्याओं का निराकरण, यहि स्थानीय स्वशासन का ध्येय है।

10.13 शब्दावली

संवर्द्धन- वृद्धि या विकास

वाह्य- बाहरी या अन्य

सूक्ष्म नियोजन- योजनाओं का छोटे रुप में लागू होना

त्रिस्तरीय- तीन स्तर

10.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1 1. ख. महात्मां गाँधी 2. 73वां व 74वां संविधान संशोधन

अभ्यास प्रश्न-2 1. ख. पंचायतों से 2. 73वां संविधान संशोधन 3. 74वां संविधान संशोधन

10.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंचायती राज प्रशिक्षण सन्दर्भ सामाग्री ,2004, हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर

2. पंचायती राज प्रशिक्षण मार्गदर्शिका ,2004 हिमालयन एक्शन रिसर्च सेन्टर

3. जल, जंगल व जमीन पर ग्राम पंचायतों के अधिकारों की नीतिगत स्तर पर पैरवी, 2002,

हार्क देहरादून एवं प्रिया नई दिल्ली

10.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारत में स्थानीय शासन- एस0 आर0 माहेश्वरी

भारत में पंचायती राज- डॉ0 के0 के0 शर्मा

भारतीय प्रशासन- अवस्थी एवं अवस्थी

10.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्थानीय स्वशासन से क्या तात्पर्य है? स्थानीय स्वशासन व पंचायतों के आपसी संबंधों को स्पष्ट करें।

2. स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता क्यों है? स्थानीय स्वशासन व ग्रामीण विकास में संबंधों की चर्चा करें।

3. 73वें व 74वें संविधान संशोधन की मुख्य बातों की विस्तार से चर्चा कीजिए।

4. स्थानीय स्वशासन की विशेषताओं और चुनौतियों को स्पष्ट करें।